सतीश जमाली की कहानियों का दूसरा संग्रह

थके-हारे

चित्रलेखा प्रकाशन
२४७, सोहबतिया बाग, इलाहाबाद-६

धके हेरे

सतीश
जकाली

प्रथम संस्करण : अक्तूबर १९७५

मूल्य : आठ रुपये

प्रकाशक : चित्रलेखा प्रकाशन, १४७, सोहबतिया बाग, इलाहाबाद-६
मुद्रक : सुपरफ़ाइन प्रिन्टर्स, १-सी बाई का बाग, इलाहाबाद-२

मार्कण्डेय जी के लिए

कहानियाँ



आभार



समारंभ (आवाज : मार्च ७२)
शाम (बच्चे : अगस्त ७४)
उत्तरार्द्ध (हातो : नवम्बर ७३)
कहानी (जन-साधारण : अप्रेल ७४)
सारिका (थके-हारे : दिसम्बर ७१, नागरिक : नवम्बर ७२)

आवाज़

मुझे उम्मीद थी कि मैं पकड़ लिया जाऊँगा, चुपचाप और यूं ही एकदम। मेरे शत्रु इसके अतिरिक्त कुछ और कर ही न सकते थे। उन्होंने अकस्मात् वार किया था। मैं जकड़ लिया गया था, पूरी तरह से और निर्ममता से। मेरे शत्रुओं ने ऐसी कोई भी चीज न छोड़ी थी जिससे मुझे ढील मिल सके। मैं बँध गया था। शत्रुओं ने ही मुझे दबोचा था, इसलिए मुझे आश्चर्य जैसी कोई चीज नहीं सूझी। मैं अपने शत्रुओं की चालों और हरकतों से पूरी तरह से परिचित था। मैं जानता था कि मुझे फँसाने के लिए वे सब-कुछ कर सकते थे, और अपने बचाव के लिए मैं कुछ भी न कर सकता था।

वे मुझे जहाँ ले आये वह एक जगह थी। जगह इसलिए कि उसके चारों तरफ तारकोल पुती दीवारें थीं। काली, भयानक और रहस्यमय। वह निश्चय ही कोई कमरा था, क्योंकि उसमें बिजली थी और अन्दर आने के लिए दरवाज़ा था। अपने शत्रुओं के बीच टँगे हुए, दरवाज़ा पार करते ही मुझे लग गया कि अब मैं यहाँ से लौटूँगा नहीं। सम्भवतः यह जगह मेरी अन्तिम साँस सुड़कने के लिए बेहद सशक्त थी। लेकिन मैं अपनी शक्तियों को पुनः बटोरने लगा। यह अद्भुत था। सिर्फ़ इतना मुझे ध्यान था कि अपने शत्रुओं के बीच मुझे निरीह और यतीम नहीं लगना चाहिए।

हालाँकि आशा बिल्कुल नहीं थी लौट सकने की, न ही कुछ और की। मैं कृपाकांक्षी न था।

यह जगह कहाँ थी, पहले मैं समझ नहीं पाया। जब उन्होंने मुझे पकड़ा था, उसी क्षण मैं अपने में डूब गया था, यह घटना कोई अप्रत्याशित नहीं थी, फिर भी मैं घोर यातना-जैसी स्थिति में से गुज़रने लगा था। इसी कारण जिस रास्ते से मेरे शत्रु मुझे इस जगह लेकर आये थे, मैं उसे और इस मौत-घर को न पहचान पाया था।

मुझे किसी प्रकार की सहायता की उम्मीद न थी। मैं इस मुक़ाबले में अकेला था। मैं यह भी जानता था कि मेरा यह मुक़ाबला असाधारण था। मुझ अकेले से हो ही क्या सकता था? यह एकदम नामुमकिन था। लेकिन कुछ आँखें मेरी तरफ़ करुण दृष्टि से देखती थीं। यह उनकी मेरे प्रति सहानुभूति थी, मैं समझता था कि वे अन्ततः मेरे काम में शामिल हो जाएँगे। उनकी नजरों की कातरता मैं समझ सकता था। मगर दूसरी ओर अलग प्रकार की मुद्राएँ थीं जो उनकी कैफ़ियत बताती थीं। वे सहानुभूतिपूर्ण चेहरे ख़ामोश थे, उदास। वे आतंक में फड़फड़ा रहे थे। और मुझे कोई उम्मीद न थी। मैं केवल उनकी सहानुभूति और आतंक को याद कर सकता था।

मेरे हाथ पहले ही बाँध दिये गये थे। मेरे पास वैसे था ही क्या? लेकिन एहतियातन उन्होंने मुझे ऊपर से नीचे तक छान मारा था। मेरे सारे कपड़े उन्होंने उतार दिये थे, और जूतों के चमड़े तक को फाड़कर देख लिया था। उन्हें उम्मीद होगी कि मेरे पास छुरा, पिस्तौल या हथगोले ज़रूर होंगे। कुछ न मिलने पर उनकी आँखों की निराशा देखने योग्य थी। उन्होंने मेरे इस क़दर असुरक्षित रहने की आशा क़तई न की थी। ढूंढने पर मेरे पास से मात्र उन्हें एक क़लम मिली थी, जिसे अच्छी तरह से खोल-खान कर देखने के बाद उन्होंने उसे दीवार से दे मारा था। उस समय वे मेरी तरफ़ इस तरह हिकारत भरी नज़रों से देख रहे थे कि कहीं उन्होंने इस व्यक्ति को ग़लत तो नहीं पकड़ लिया। उनका शत्रु ऐसी निरीह अवस्था

में होगा, उन्होंने कल्पना तक न की थी।

उन्होंने मुझे बेरहमी से फर्श पर पटक दिया। मेरे बदन पर एक भी कपड़ा न था। परन्तु अपना नंगापन मुझे उस समय ज़रा भी महसूस न हो रहा था। मैं बिजली की रोशनी में उन आठों व्यक्तियों के चेहरे गौर से देखने में व्यस्त था, जो मेरे चारों ओर खौफ़नाक 'चमकीली आकृतियाँ' लिये खड़े थे। मैं उनमें से तीन व्यक्तियों को पहचानता था, रामलाल को, बधैनी को, मिलखीराम को। ये तीनों मेरे शत्रुओं के खास गुर्गे थे। उस समय उन तीनों के धड़ों के ऊपर मुझे उनके नहीं अपने शत्रुओं के चेहरे जड़े हुए दीखे। बाकी पाँच को मैं पहचानता न था, सम्भवतः वे किराये के हों या अन्दर के हों। उन पाँचों के चेहरों पर कठोरता थी, जबकि वे तीनों गुर्गे अपनी सहज मुद्रा में थे, जैसे कि यह उनके लिए रोजमर्रे का काम हो।

उसी वक्त मेरे असली शत्रु की अनेक आकृतियों में से एक आकृति दरवाजा खोलकर अन्दर आयी। यह व्यक्ति चेतनकुमार था। मेरा असली शत्रु। मैंने उसे घूरकर देखा। वह मुझे पहले से ही घूर रहा था। फिर ऐसा हुआ कि वह एकदम ठठाकर हँस पड़ा। मैंने समझा कि वह मुझे उस तरह नंगा और पस्त देखकर हँस रहा था और सच भी यही था। वह मेरे शरीर को बेतरह घूर रहा था और हँस रहा था। अब वे तीनों गुर्गे भी हँसने लगे। परन्तु वे पाँचों चेहरे अभी कठोर थे। फिर जब चेतनकुमार चुप हो गया और संजीदा बन गया तो उन पाँचों में से चार ने अपने लम्बे छुरे बटन दबाकर हाथों में थाम लिये और पाँचवें ने पीतल का बना सख्त मुक्का अपने दायें हाथ के पृष्ठ भाग पर चढ़ा लिया।

बधैनी ने कहा—"शुरू करो!"

—और एक छुरा मेरी पिंडली के आर-पार हो गया। मैंने अपनी चीख दबा ली। खून की धाराएँ दोनों तरफ से उछलीं। इसी क्षण पीतल का मुक्का मेरी छाती पर आ बजा। मैंने उसकी भारी चोट महसूस की, लेकिन अपने होश को गायब न होने दिया। असह्य का सहना कितना कठिन होता है! लेकिन मैं सह गया। अपने शत्रुओं को मैं यह मौका न देना चाहता

था कि वे मेरी चीख-पुकार सुनकर प्रसन्न हों ।

—गाड़ दो साले को यहीं फर्श के नीचे !—चेतनकुमार ।

—साला बदमाश बनता है हरामजादा !—बघैनी ।

—मारो कुत्ते के पिल्ले को !—चेतनकुमार ।

—बड़ा तीसमारखां बना फिरता था, सूअर की औलाद !—रामलाल ।

—लक्कड़ ठूंस दो साले के चूतड़ों में !—मिल्खीराम ।

—मजाक समझ रखा था कुत्ते के पुत्तर ने !—मिल्खीराम ।

—साले, बदमाशी तो हम तुम्हारे बाप की भी निकाल दें !—बघैनी ।

—अब देख लिया मजाक !—रामलाल ।

—प्यार से कहा, मान जाओ तो लगे ये आँखें दिखाने !—रामलाल ।

—काट लो साले का औज़ार !—मिल्खीराम ।

—कान भी काट लो !—चेतनकुमार ।

—नाक भी काट लो !—मिल्खीराम ।

—आँखें भी निकाल लो !—बघैनी ।

—अँतड़ियाँ भी !—रामलाल ।

—मारो ठुड्ड साले की रीढ़-हड्डी पर !—बघैनी ।

—और खोपड़ी पर भी !—चेतनकुमार ।

—और पेट पर भी !—रामलाल ।

—और चूतड़ों पर भी !—मिल्खीराम ।

—साले की चमड़ी में नमक भर दो !—रामलाल ।

—नम्बर चार, इसके मुँह में पेशाब करो !—मिल्खीराम ।

—नम्बर एक, इसके बाल उखाड़ लो !—रामलाल ।

—साले, माँ के यार, बड़े काबिल बनते थे !—चेतनकुमार ।

—उकसाने पर तुले थे !—चेतनकुमार ।

—भय खाओ जहन्नुम में !—मिल्खीराम ।

—देखो, साले को अभी भी शर्म नहीं आती !—बघैनी ।

—साला, अभी भी मुस्करा रहा है !—रामलाल ।

—अभी भी माफ़ी माँगने को तैयार नहीं है !—मिल्खीराम।

—कचूमर निकाल दो हरामजादे का !—चेतनकुमार।

—मुँह में टट्टी भर दो साले के !—रामलाल।

—पाँव काट लो !—मिल्खीराम।

—सर में कीलें ठोंक दो !—रामलाल।

—जुबान काट लो मादरचोद की !—धर्मंनी।

अभी तक सिर्फ़ मेरी एक पिंडली मे छुरा आर-पार था और छाती में पीतल के मुक्के का दर्द। बाकी सब बातें ही थीं। अभी तक मेरे सभी अंग सलामत थे। नाखून, दाँत, हाथ-पाँव तोड़े-उखाड़े-काटे नहीं गये थे। अँतड़ियाँ, आँखें वहीं थी। औज़ार सलामत था। मुँह में टट्टी-पेशाब नहीं किया गया था। चूतड़ों में लक्कड़ और सर में कीलें नहीं ठुकी थीं। वे सब सिर्फ़ बातें थीं। शायद यह कुछ क्षण मुझे अपनी आत्महीनता की स्थिति को महसूस करने के लिए दिये गये थे। और यह सब मेरे लिए अत्यन्त यातनापूर्ण था। मैं चाहता था कि वे मुझे एकदम से खत्म कर दें। ताकि किस्सा पाक हो। सोचने, समझने और महसास करने की सीमाएँ खत्म हो जाएँ। यह सोचना तो सौ-प्रतिशत मूर्खतापूर्ण था कि वे मुझे शायद छोड़ दें। यह असम्भव था।

वे फिर शुरू हुए। अब की उनकी बातें सीधी और साफ़ थीं—

—साहब ने क्या कहा ?—रामलाल।

—इसे खत्म करना होगा !—चेतनकुमार।

—अगर बात निकल गयी तो ?—रामलाल।

—कैसे निकलेगी ?—चेतनकुमार।

—मान लें अगर निकल गयी ?—रामलाल।

—कैसे मान लें, कैसे निकल सकती है ? निकल ही नहीं सकती !—चेतनकुमार।

—लेकिन मानने में क्या हर्ज है ?—रामलाल।

—भई, क्यों मान लें ? ऐसा सोचना ही फ़िजूल है ! ऐसा कुछ नहीं

हो सकता !—चेतनकुमार ।

—अच्छा, ठीक है, न मानें, लेकिन पुलिस को अगर जरा भी सुराग मिल गया तो, वो फिर ?—रामलाल ।

—तो क्या होगा ? अरे, हमारे पीछे मैनेजमेंट है । मैनेजमेंट के पास करोड़ों रुपया है । और पुलिस, तुम जानते हो, कुत्तों से भी बदतर है !—चेतनकुमार ।

—तब ठीक है, तब हमें कोई चिन्ता नहीं !—रामलाल ।

—यह बताइए, क्या हमारा एक ही शिकार है ?—मिल्खीराम ।

—हाँ !—चेतनकुमार ।

—और तो कोई वावेला नहीं कर रहा ?—मिल्खीराम ?

—नहीं । इसी का दिमाग अधिक खराब था !—चेतनकुमार ।

—साला बेवकूफ है, दो-चार हज़ार लेता, और शराफत से शहर छोड़ देता !—मिल्खीराम ।

—पाँच हज़ार तक आफर किया गया था !—चेतनकुमार ।

—तो मरो साले, अब जहन्नुम में जाकर परोपकार करना !—मिल्खीराम ।

—क्या इसे अब कुछ अधिक आफर किये जाने की सम्भावना है ? बचैनी ।

—अब कोई चान्स नहीं, अब यह सिर्फ़ मरेगा !—चेतनकुमार ।

—तो फिर देर क्यों ?—मिल्खीराम ।

—देर कोई नहीं, मेरी तरफ से कोई देर नहीं, साहब को मालूम हो चुका है, और उनकी इजाजत है ।—चेतनकुमार ।

—सब कैसे होगा ?—मिल्खीराम ।

—पहले इसे कुछ फ़िजूल की यातनाओं में से गुजरना होगा, बीस-पचीस मिनट तक । फिर रस्सी का फन्दा कस कर गला घोंटा जाएगा । उसके बाद शहर के बाहर सड़क पर फेंककर ट्रक से—चेतनकुमार ।

—लेकिन एक बात है ?—रामलाल ।

—क्या ?—चेतनकुमार ।

—यह अन्दर वालों की तरह नहीं है। यह बाबू तबका का है। किसी को इसके ग़ायब होने के बाद ज़रा भी शक हो गया तो बवंडर खड़ा हो सकता है, पुलिस-इंक्वायरी बैठ सकती है!—रामलाल।

—तुम भी पागल हो। अरे, हमने कोई किसी का ठेका ले रखा है! कोई चाहे मरे, भाग जाए, या शराब पीकर ट्रक के नीचे आता फिरे, कम्पनी का इससे क्या संबंध है ? और इंक्वायरी करने वालों को सबूत कहाँ से मिलेगा ? लेकिन ख़ैर, मान लो''''अव्वल तो ऐसा होगा नहीं'''' लेकिन तुम मान लो, कि पुलिस को पूरा सबूत मिल जाता है, तो फिर उससे क्या होगा ? कुछ भी तो नहीं। इंक्वायरी करने वालों को चाँदी के चार-चार जूते पड़ेंगे और वे बकरी की तरह में-में करते हुए आगे-पीछे घूमेंगे।—चेतनकुमार।

—यह तो आपने बिलकुल सही कहा—रामलाल।

दरवाज़ा फिर खुला। एक रौबदार व्यक्ति अन्दर आ गया। यह परसनल आफिसर था, सिनहा।

उसने मेरी तरफ़ देखकर अकस्मात् आश्चर्य प्रकट किया। कैसा आश्चर्य ? उसने मेरी पिंडली के आर-पार छुरा देख लिया था।

उसने पूछा—यह क्यों ?

—इसे चुप कराने के लिए। इसने हम पर वार करने की कोशिश की थी।—चेतनकुमार झूठ बोल गया।

सिनहा ने एक इशारा किया। तीनों गुर्गे और पाँचों दूसरे व्यक्ति बाहर चले गये।

सिनहा ने कहा—मिस्टर चेतन, मैंने तुम्हें फोन किया था, तुम मिले नहीं, इसलिए सोचा तुम यहीं होगे। सुनो, पहले वाली स्कीम मैंने कैंसिल कर दी है। उसमें थोड़े ख़तरे की गुंजायश है। मैंने दूसरा प्रबन्ध कर लिया है। तीसरी शिफ्ट के शुरू में इसे सबसे बड़ी वाली फर्नेस में फेंक दिया जायगा। उसके लिए तुम्हें कुछ नहीं करना है। एक आदमी आएगा

और इसे ले जाएगा। अभी तीसरी शिफ्ट शुरू होने में साढ़े तीन घण्टे बाकी हैं। इस बीच तुम बाहर गये लोगों को समझा सकते हो कि समझौता हो गया है। और हम इसे छोड़ रहे हैं। समझ गये न मतलब? मेरे ख्याल में इन लोगों को समझा देना ही ठीक रहेगा। क्यों कहीं कोई भी कमजोरी रह जाए!

तारकोल-पुती दीवारों का मतलब अब मेरे सामने था। अब मेरी समझ लौट आयी थी। एक ही शब्द फर्नेस ने इस जगह की सारी वास्तविकता को मेरे सामने नंगा कर दिया था। ऐसे ही पाँच-छः और कमरे इस कमरे के अगल-बगल में हैं। और यह जगह फैक्टरी से जुड़ी उसकी एडमिनिस्ट्रेशन बिल्डिङ्ग के नीचे की बेसमेंट है, गोदाम, यहाँ रेकार्ड रखे जाते हैं। इसके सम्बन्ध में मैंने कभी पहले अपने एक साथी आडिट क्लर्क से सुना था। दीवारों पर तारकोल शायद इसलिए पुती थी कि कीड़े या चूहे या दीमक कागज़ खराब न करें।

इन दोनो ने बाहर जाने से पहले एक-दूसरे को भरपूर नज़रों से देखा।

सिनहा ने कहा—यह छुरा पिंडली में से निकाल लो और बाहर जाकर जिसका हो उसे दे दो।

चेतनकुमार ने छुरा खींच लिया। दोनों बाहर चले गये।

अन्दर जैसे अँधेरा छा गया, जब कि बिजली जल रही थी।

अब मैंने सोचा, फ़िलहाल मैं आज़ाद हूँ।

अब मैं अकेला था। तारकोल-पुती दीवारें। बिजली की रोशनी। फर्श पर खून। दरवाज़ा बन्द। इन सब के बीच मैं अकेला था। अकेला होना आजाद होना नहीं होता। फिर भी मुझे एक मुक्ति, एक जबर्दस्त छुटकारे का अहसास हुआ। उन लम्बी, मजबूत, ऊँची दीवारों के बीच मैंने अचानक अपने को आजाद पाया। मैं खुश था। यह निश्चित था कि यह आजादी ढाई-तीन घण्टे से अधिक समय के लिए नहीं थी। फिर भी यह मेरी आखिरी आजादी थी। यहाँ से निकल पाना असम्भव था, मैं जानता था।

वे निश्चित समय पर भाएँगे, भौर मुझे ले जाएँगे। मैं उनकी कौम को जानता था।

भचानक यह विचार मेरे भन्दर पैदा हुभा कि मैं भब इस संसार में नहीं रहूँगा। यह एक ऐसा झटका था जिसे मैंने भपने प्रत्येक भंग में महसूस किया। दुःख की एक स्थिति मेरे चारों भोर फैल गयी, बल्कि मेरे मांस पर चिपट गयी। परन्तु यह क्षणिक था। इस दुख का प्रभाव धीरे-धीरे नहीं, एक झटके से ही गायब हो गया। यह शायद इसलिए हुभा कि मेरे दिमाग में एक बार फिर यह बात भायी कि इस समय तो मैं भाजाद हूँ। फिर सारी बातों का विश्लेषण करने लगा। यह जो कुछ हो गया था, उसकी मुझे बिलकुल उम्मीद थी। लेकिन वे मुझे यों भट्टी में झोंक देंगे, ऐसा मैंने न सोचा था। लेकिन एक तरह से यह भच्छा ही होगा, मैंने सोचा, मुझे मरने में कितना समय लगेगा? सिर्फ एक सेकंड, हद-से-हद तीन सेकंड।

मैं बड़ी भासानी से भपनी मौत के बारे में सोच गया। मुझे कोई डर नहीं लगा। मैंने सोचा, यह कैसी भजीब स्थिति है। यानी मौत का डर न लगना। जब कि सब कुछ तय है। सब-कुछ। ढाई या तीन घण्टे का समय, भौर मुझे मरना है।....मैंने सोचा, मैं कोई महापुरुष नहीं हूँ, देश-भक्त भी नहीं हूँ, पागल कुत्ता भी नहीं हूँ, किसी भी तरह से भसाधारण भी नहीं हूँ।....इसलिए इस भयावह धक्के से मेरा दिमाग सुन्न हो जाना चाहिए था या खाली....लेकिन मैं तो सोच रहा था। फिर? फिर क्या? यदि मैं डर नहीं रहा, तो....तो बेहद भसाधारण सही, भच्छा तो हूँ। कारण-वारण के पीछे पड़ने से क्या फायदा कि मैं क्यों नहीं डर रहा? बस नहीं डर रहा। भच्छा ही तो है। तो मैंने बल्ब की तरफ देखा। बल्ब वैसे ही जल रहा था। मुझे एक बार फिर लगा, मैं भाजाद हूँ।

भचानक मैं बैठ गया। इसलिए कि पड़े-पड़े मैं बेहद थक गया था। मेरी उस टाँग से भभी तक लहू बह रहा था। टांग में दर्द भी था। भौर ज्यादा लहू बह जाने से ही शायद थकावट भौर सारे शरीर में कमजोरी

भर गयी थी। मैंने देखा, कमरे में जगह-जगह, बल्कि हर जगह खून था। कुछ जम गया था, कुछ अभी भी नम लगता था। मुझे लगा, मेरी माँ ने मुझे पैदा करते वक्त भी इतना खून नहीं गिराया होगा।

....एक प्रश्न तभी मेरे अन्दर पैदा हुआ। अचानक मैं सोच गया, मेरा यह खून क्या बेकार चला गया? मुझे अफसोस हुआ। यह भी लगा, मेरे अन्दर का असली मैं खत्म हो गया हूँ और जो बचा हूँ वह व्यर्थ हूँ, फिजूल हूँ, वह सिर्फ सजा भुगतने के लिए बचा हूँ। मैं हीन भावना में घिर गया। मैंने सोचा, मेरी आवाज क्या गुम हो गयी? आवाज क्या यूँ पलक झपकते गुम हो जाया करती है? मुझे अपने कुछ साथी याद आ गये। हाँ, उन्हें अपना साथी ही कहूँगा। लेकिन दर्द कम न हुआ। दर्द बराबर था। मैंने पीठ दीवार से टिका ली और टाँगें पसार दीं।

जब मैंने सामने देखा तो मैं हैरान हुआ। जिस दीवार से टेक लगाये मैं बैठा था, दरवाजा ठीक उसके सामने था। अब तक मैं दीवारें-ही-दीवारें या बल्ब को देखता रहा था। दरवाजे को मैंने देखा ही न था। उसे मैं शायद देख ही न पाया था। या उसे देखा भी था तो उसने मुझे इतना आकर्षित नहीं किया था, चौंकाया नहीं था, जितना अब। वह वैसे ही बंद था। बाहर उसमें ताला भी लगा होगा, मैं जानता था। मैं एकटक उसे देखे जा रहा था। मुझे बार-बार ऐसा लग रहा था कि मैं उठ कर उसे अन्दर की तरफ खींचूँगा तो वह खुल जाएगा, और मैं यहाँ से भाग जाऊँगा। हालाँकि ऐसा हो, तो अच्छा ही होगा। लेकिन मुझे यह सब अजीब लग रहा था। बेहद अजीब। डर की तरह अजीब।

यह सब बेवकूफी है, यह डर या आश्चर्य। मूर्खता है। मैंने आँखें बन्द कीं तो एक दृश्य सामने उभर आया....

....मैंने दरवाजा खोला और अन्दर चला गया और कुर्सी पर बैठ गया। पर्सनल अफसर सिनहा ने सिर नहीं उठाया। यह उसकी आदत थी। किसी को वह बात करने के लिए बुलाए या खुद कोई उससे बात करने उसके पास जाए, तो वह इस खास वक्त कागज पर कुछ-न-कुछ

ज़रूर खींचने लगता था। मुझे गुस्सा आ गया, परन्तु मैं शांत रहा। लगभग एक मिनट बाद उसने कलम नीचे रखी और मुस्कराया। फिर लगातार मेरी आँखों में और मेरे चेहरे पर गौर से देखता रहा। सुना था कि एम० ए० में उसने मनोविज्ञान लिया था। फिर उसने कहा—मिस्टर सक्सेना....

मुझे धक्का लगा। मैंने आँखें खोल दीं। मैं हैरान था। अचानक ही पीछे की बातें याद आनी शुरू हो गयी थीं। मैंने दरवाजे की तरफ देखा। सोचा, अब इन बातों को याद करने से क्या होगा, जब कि अब वक्त इतना कम है। और अचानक ही यह ख्याल आया कि जीवन का यह इतना कम और आखिरी समय दुखी होकर क्यों बिताया जाए? इस वक्त कुछ याद करना शायद बेहतर हो। इस ख्याल से मैं आश्वस्त हुआ। मैंने फिर आँखें बन्द कर लीं—

....पर्सनल अफ़सर सिनहा ने कहा—मिस्टर सक्सेना, कैसा चल रहा है?

मैंने कहा—जी, ठीक है, सर।

उन्होंने फिर कहा—सब ठीक है?

—जी!

—आपको कोई दिक्कत तो नहीं?

—जी, नहीं सर।

—कोई भी शिकायत नहीं।

—जी, नही सर!

सिनहा ने फिर मेरी आँखों में घूरना शुरू कर दिया। मैंने नजर झुका ली। वह मुझे घूरता रहा। मेरे माथे पर पसीना आ गया। उसने कागज़ काटने वाली प्लास्टिक की छुरी हाथ में ले ली थी और उसे शीशे के पेपरवेट से बजाने लगा—टक-टक।

उसने कहा—मिस्टर सक्सेना, इधर मैंने कुछ सुना है?

—किस सम्बन्ध में?

—आपके सम्बन्ध में।

—क्या?

—क्या आपको नहीं पता?

—मुझे तो नहीं पता।

सिनहा चुप हो गया।

फिर तुरन्त ही शुरू हुआ—आपको कोई शिकायत है?

—नहीं।

—तो फिर मैं क्या सुन रहा हूँ?

—क्या?

—आपको नहीं पता?

—मुझे तो पता नहीं है।

—मेरे पास शिकायत पहुँची है।

—क्या?

—क्या आपको पता नहीं?

—मुझे तो कुछ मालूम नहीं।

—आप कुछ गड़बड़ करने की कोशिश में हैं?

—जी....

—मेरे पास पक्का सबूत है।

—जी....

—आप लोगों को भड़का रहे हैं।

—जी....

—और यह आपके हक में बिलकुल अच्छा नहीं होगा।

मेरे माथे पर जो पसीने की बारीक तह थी, वह एकदम ही गायब हो गयी। इसलिए कि अब कुछ भी छिपा न था, और अब झिझकने या संकोच करने की कोई जरूरत भी न थी।

सिनहा जोश में था। उसने कहा—आप जो चाहते हैं वह यहाँ हर-गिज न होगा, कम-से-कम मेरे रहते हुए। मैं तो समझता था, आप शायद

हैं, लेकिन मेरा ख्याल ग़लत निकला। मुझे आपसे ऐसी आशा बिलकुल न थी। और अब दो ही बातें हो सकती हैं, या तो आप अपनी हरकतों से बाज़ आएँ या इस्तीफ़ा देकर यहाँ से चले जाएँ। मुझे खुद आपकी इज्जत का खयाल है, वरना आपको निकालने में ज़रा भी देर नहीं लगेगी।.... अब कहिए, आप क्या चाहते हैं? मुझे आपका फैसला अभी चाहिए।

मैंने सोचा, अब बात को खत्म ही कर लेना चाहिए। अच्छे मौके पर वार करना ही बुद्धिमानी कहलाती है। मैंने अपनी बात एक छोटे भाषण की शक्ल में उसके सामने रखी—सिनहा साहब! मुझे लगता है कि आपको कोई बहुत बड़ी ग़लतफ़हमी है। मैं आपको बता दूँ, मुझे जो काम करना है वह करना ही है! मुझे आप या कोई और रोक नहीं सकता, दबा नहीं सकता। मेरी नौकरी लेने की जो आपने धमकी दी है, सो उसे आप अपने चूतड़ों में घुसेड़ लीजिए! माफ़ कीजिए, मैं ऐसा ही कहने पर मजबूर हूँ। और आपको बता दूँ, मुझे आपकी इस डेढ़ सौ रुपल्ली वाली नौकरी की कोई चिन्ता भी नहीं है! आप चाहें तो लायल बनते फिरिए! मैं ऐसा नहीं बन सकता! मुझे क्या जरूरत है? जब मालिक मेरे या हमारे प्रति लायल नहीं हैं तो मुझे या हमें उनके प्रति लायल बनने की क्या जरूरत है? यह लायलटी दोनों ओर से होनी चाहिए! समझे आप? एक बात मैं आपको और बता दूँ, मेरी नौकरी लेना इतना आसान नहीं है, जितना आप सोच रहे हैं। मैं एक-एक की माँ की....और [redacted] देखता हूँ, तब आप भी कैसे नौकरी कर पाते हैं।

और मैं उठकर बाहर आ गया।

शाम को छुट्टी होने से आधा घण्टा पहले ही शार्ट लीव लेकर मैं शर्मा के कमरे पर चला गया।

तब तक स्टाफ़ के लगभग सभी लोगों में यह किस्सा फैल चुका था, यह मैंने जान लिया था। जरूर कोई सज्जन या दुर्जन पर्सनल अफ़सर के कमरे के बाहर खड़ा सारी बातें सुन गया था।

छुट्टी होने पर जब [illegible] कमरे में

दाखिल होते ही उसने गहरी नजरों से सब तरफ देखा। फिर कमरे में वह चक्कर लगाने लगा। वह कुछ बोला नहीं। वह बहुत बेचैन लगता था। मैंने अनुमान लगाया, वह अपने कमरे में मेरी उपस्थिति से ज्यादा परेशान था। उसकी यह बेचैनी-परेशानी की स्थिति काफी देर तक बनी रही।

फिर वह बोला—तुम मेरी बात का बुरा न मानना। मैं तुमसे जो कह रहा हूँ उसे तुम ध्यान से सुनो! तुम यहाँ से अभी चले जाओ, और काफी दिनों तक यहाँ मत आना। फैक्टरी के आस-पास कभी मुझसे कोई बात भी न करना। मैं बहुत गरीब आदमी हूँ। मुझसे जरा ही छोटी मेरी एक बहिन है, मुझे उसकी शादी करनी है। घर पर बूढ़े बाप हैं जो बहुत बेचारे हैं और कुछ नहीं करते। मुझे उन सबके लिए खर्च भेजना होता है। यह मेरे लिए जरूरी है। अगर मेरी यह नौकरी चली गयी तो मेरे साथ ही उन सबकी भी बुरी हालत हो जायगी।

मैं पहले ही समझ गया था कि वह कुछ ऐसी ही बातें करेगा। वह कुछ ऐसे ही मूड में कमरे में दाखिल हुआ था।

उसने फिर शुरू किया—तुम मेरी इन बातों से मुझे कमीना, दब्बू, डरपोक समझने लगे होगे। तुम्हारा ऐसा समझना सही भी है। लेकिन.... लेकिन मैं क्या कर सकता हूँ? क्या कर सकता हूँ? यह भी सही है कि मेरी आज की इन बातों से मेरे पिछले तमाम विचार रद्द हो जाते हैं। लेकिन मैं क्या कर सकता हूँ? मुझमें समझ है, मैं तुमसे भी कहीं ज्यादा तेज हूँ, तुम जानते हो। लेकिन मैं विवश हूँ। निहायत विवश। मेरी परिस्थितियाँ ही ऐसी हैं। मेरी इन्हीं परिस्थितियों ने मेरी आत्मा की हत्या कर दी है। और अब मैं इस सच्चाई पर पहुँच चुका हूँ कि मैं कुछ नहीं कर सकता, कुछ नहीं। मैं कोई काम नहीं कर सकता, मैं मर चुका हूँ।

शर्मा रो पड़ा।

लेकिन यह नाटक नहीं था। वह रोने [illegible] सच्चा था।

कुछ देर मैं चुप रहा। मुझे लगा कि मेरे लिए अब यहाँ कुछ नहीं

है। मुझे वहाँ बैठा रहना मुश्किल लगा। तब मैं बाहर चला आया। थोड़ा आगे आने पर मुझे खाली रिक्शा मिल गया, जिसमें बैठकर मैं अपने कमरे तक पहुँच गया। कमरे में खाने के लिए कुछ न था। अँधेरा होना शुरू हो गया था। मैंने बत्ती नहीं जलायी और ऐसे ही चारपाई पर लेट गया।

इस समय मैं इस बात की खोज कर रहा था कि शर्मा की आज की बात से मुझे कुछ तकलीफ़ या अफ़सोस हुआ है कि नहीं। लेकिन उसकी बात का मुझ पर कोई विशेष असर नहीं हुआ था। यह स्वाभाविक था। हालाँकि इस सारी खुराफ़ात की शुरूआत शर्मा के कारण ही हुई थी। बल्कि एक तरह से उसी ने इसे शुरू किया था। इस सब की जड़ में वही था। वही मुझे कोंचता, उकसाता, समझाता रहता था। बार-बार, बार-बार, बार-बार। वह ज़बर्दस्त कन्वेसर था, जब कि मैं भी अपने को किसी से कम न लेता था। लेकिन मैं मान गया था कि वह वह ही है, मैं उसे नहीं पा सकता। शर्मा फ़ैक्टरी के स्टाफ़ क्लब का संयोजक था, स्टाफ़ के लोगों में काफ़ी प्रिय और रोब वाला और काफ़ी मिलनसार भी। मैं इस फ़ैक्टरी में अभी नया ही था, इसलिए अपने मतलब से मतलब रखता था, शान्त रहता था, कम बोलता था। अधिकतर मैं क्लब नहीं जाता था। यदि जाता भी था तो किसी से खास सरोकार नहीं, दो-एक समाचार-पत्र या पत्रिकाएँ उलटी-पलटी और वापस। बाद में अपना यह रवैया मुझे खुद ही भद्दा-सा लगने लगा। यानी अपना इतना शान्त रहना और किसी से न बोलना। क्लब द्वारा तिमाही या छमाही कोई-न-कोई विशेष कार्यक्रम आयोजित होता ही रहता था। शर्मा इस माने में बहुत मेहनती और दिलचस्प भी था। कभी फ़ैन्सी ड्रेस का कार्यक्रम, कभी-कभी कोई नाटक, कभी सिर्फ़ डिनर—साथ में संगीत, कभी कविता-प्रतियोगिता, कभी वाद-विवाद-प्रतियोगिता, कभी हँसी-मजाक का रंगारंग कार्यक्रम। मैं जब कालेज में पढ़ता था तो अक्सर वाद-विवाद-प्रतियोगिताओं में भाग लिया करता था और लगभग हर बार इनाम भी जीत लाता था। मेरा गला भी बहुत साफ़ और अच्छा था और मैं फ़िल्मी गाने, ग़ज़लें या गीत गाकर लड़कों को खुश

करता रहता था। इस क्लब में भी ये चीजें मेरी सहायक बनी। मतलब कि थोड़ी जानकारी बढ़ाने के लिए, थोड़ा रोब ग़ालिब करने के लिए। अबकी बार क्लब की ओर से जो वाद-विवाद प्रतियोगिता का आयोजन हुआ, तो उसमें मैंने भाग लिया और जैसी मुझे उम्मीद थी, उसमें मैं अव्वल रहा।

मैं खुश हुआ। इसका जो विशेष फ़ायदा मुझे हुआ वह यह कि मैं स्टाफ़ के साढ़े-छः सौ लोगों में एकदम मशहूर हो गया। प्रतियोगिता में भाग लेने का मेरा सबसे बड़ा मकसद था भी यही। मशहूर होना। मशहूर होना, ऐसे ही। परन्तु इससे जो सबसे बड़ा फ़ायदा हुआ वह यह कि शर्मा ने मुझे पहचान लिया। वह मेरे बहुत करीब आ गया। मुझे भी खुशी हुई। एक अच्छे व्यक्ति को अपने करीब पाकर खुश होना स्वाभाविक ही था। शर्मा फ़ैक्टरी में तीन-चार साल पुराना था। उसकी तनख्वाह इस समय एक सौ नब्बे थी। यकीन नहीं होता था कि आज की स्थितियों में इतने पैसे में कोई अपने-आपको इस ढंग से ठीक-ठाक रख सकता है। वह पढ़ता भी खूब था। हर समय व्यस्त दीखता। मोटी-मोटी पुस्तकों से जूझता रहता। आप उससे किसी भी विषय या समस्या पर बात कर लीजिए। उसे लिखने-विखने का शौक नहीं था, मगर वह एक साहित्यिक संस्था का सदस्य भी था। इस संस्था में फ़ैक्टरी के दो-तीन कवि-शायर-लेखक थे और दो-तीन शहर के भी ऐसे ही लोग। ये सब लोकल प्रतिभाएँ थीं। शर्मा ने मुझे भी इस संस्था का सदस्य बनवा दिया, पता नहीं क्या सोचकर। संस्था की बैठकें हर पन्द्रह रोज़ में बाकायदा होती थीं। शर्मा जरूर आता। वहाँ वह ऐसे बोलता, जैसे वाकई ही वह एक मँजा हुआ लेखक हो। यही तो उसमें खासीयत थी। वह जहाँ या जिस विषय पर भी बोलता हमेशा ठीक मुहावरे से ही बोलता। इसी संस्था की बैठकों में बराबर जाने से मैं शर्मा के अन्दरूनी विचारों से पूरी तरह से अवगत हुआ। वह प्रगतिवादी था, सर से पाँव तक। और फिर उसने मुझे भी न छोड़ा।

तब पहल भी उसी ने की। एक दिन उसने स्पष्ट कह दिया—देखो

सक्सेना, एक काम हम लोगों को करना है। वह यहाँ आज तक नहीं हुआ। नहीं हो पाया। कुछ तो स्टाफ के लोगों की कमज़ोरी और कायरता के कारण और कुछ मालिकों और उनके गुर्गों तथा जासूसों के अधिक सतर्क होने के कारण। हम स्टाफ के साढ़े छः सौ लोग लगातार मर रहे हैं। यह काम जिसे हमें करना है वैसे अधिक कठिन नहीं है, लेकिन योजना-बद्ध ढंग से यदि यह पूरा हो जाए तो कोई बात बने। देखो, फैक्टरी के चार हज़ार मजदूरों की एक यूनियन होने से इन मजदूरों की शिकायतों की सुनवाई हो जाती है। इसी तरह से यदि स्टाफ के लोगों का भी एक संगठन बन जाए तो हमारी शिकायतों की भी सुनवाई होने लगे। देखो, एकदम अनपढ़ और जाहिल मजदूर आपस में एकट्ठा होने का महत्व समझ सकते हैं। स्टाफ के लोग तो खासे पढ़े-लिखे हैं, उनके बुद्धि है, समझ है, काब-लियत है। अगर तुम साथ दो तो"""

और हमने काम शुरू कर दिया था। हमें जल्दी नहीं थी। हम चाहते थे कि काम चाहे बहुत धीरे-धीरे हो, चाहे इसमें एक वर्ष लग जाए या दो वर्ष या तीन वर्ष, लेकिन काम ठोस हो, पक्का हो, सही हो, किसी गड़बड़ी का अंदेशा न रहे। हमने काम योजनाबद्ध ढंग से शुरू किया था। हम भीड़ इकट्ठी न करते थे, मीटिंग न बुलाते थे, किसी जलसे या हुजूम का आयोजन न करते थे। हम एक-एक व्यक्ति के पास जाते थे। उससे अलग-अलग बात करते थे। बातें अधिकतर मैं ही करता था, लेकिन शर्मा मेरे साथ रहता था। इसलिए लोग समझते कि मेरी बात के पीछे वह भी है। इससे दुगुना असर होता। इस तरह कुछ ही दिनों में हमने दो-चार साथी और भी तैयार कर लिये, जो स्टाफ के दूसरे लोगों से भी इसी मकसद से बातचीत करने को तैयार हो गये। हमारी योजना थी कि लगभग पचास लोग भी पूरी तरह से हमारे साथ आ जाएँ तो एक बड़े हल्ले के बारे में सोचा जाए। तब कुछ पर्चे-वर्चे छपवाकर भी बाँटे जा सकते थे। लेकिन हमारा काम जोखम और मुश्किलों से भरा था। क्या पता, स्टाफ में कौन-कौन मैनेजमेण्ट के जासूस थे। स्टाफ में कम-से-कम चालीस व्यक्ति तो मालिकों

के अपने थे ही, यह हमें पता था। और इन लोगों से बच पाना या इनसे छिपकर कोई हरकत करना बड़ा ही कठिन था। स्टाफ में मैनेजमेण्ट के ये जासूस सबसे अधिक सुखी थे। चाहे ये लोग अपना दफ्तर का काम करें या न करें, हर साल इनको चालीस-चालीस, पचास-पचास रुपये की तरक्की जरूर मिलती थी। ऊपर से इनाम-इकराम अलग। पकड़ाई-धकड़ाई का मुआवज़ा अलग। और भी कई तरह की सहूलियतें। ये लोग हर वक्त इसी फ़िराक में रहते थे कि पकड़ाई-धकड़ाई का कोई मौका मिले।

लेकिन हम भी कोई बेवकूफ या कमजोर न थे। हमारी सबसे बड़ी शक्ति हमारी सच्चाई थी, जिससे हम अपने साथियों को अच्छी तरह प्रभावित कर सकते थे। हमारे पास भाषा थी, हमारे पास अपने उद्देश्य को लेकर ठोस बातें थीं और सबसे बड़ी चीज कि हम लोगों में कोई घबराहट न थी, और हम अपने इस काम के लिए अधिक से अधिक परिश्रम करने को तैयार थे। यह तो हकीकत थी कि स्टाफ का हर व्यक्ति दबा हुआ था, नाउम्मीद था, भाग्य पर आश्रित था। हमने उन्हें उनकी कमियाँ बताकर उन्हें झटका देकर सचेत करना शुरू किया। हमने उन्हें बताना शुरू किया कि इस तरह से तो हम मर जाएँगे, हमें कम-से-कम एक कोशिश तो जरूर ही करनी चाहिए। कुछ लोगों ने हमारी बातों को ध्यान से सुना। कुछ ने हमें शक की निगाह से भी देखा कि शायद हम मैनेजमेण्ट के आदमी हों और उनका भेद ले रहे हों। ऐसे लोगों को हम पर किसी प्रकार भी यकीन ही न होता था। इनके दिमागों में जंग लग चुका था। इन लोगों की सहन-शक्ति भी कमाल की थी। ये सालों से ऐसे ही घिसटते चले आ रहे थे। लेकिन महँगाई-भत्ते के लिए भी कुछ कहने को तैयार न थे। वे मकान अलाउंस की बात नहीं उठा सकते थे। वे बेसिक सैलरी को बढ़ाने की माँग नहीं उठा सकते थे। वे वार्षिक तरक्की की धाँधली के विरुद्ध कोई आवाज नहीं उठा सकते थे—कि क्यों मैनेजमेण्ट के जासूसों को वार्षिक तरक्की के चालीस या पचास रुपये मिलते हैं और इन जैसे घिस्सू, मेहनती और शरीफ लोगों को दस रुपये भी नहीं मिलते।""यही तो हमारी

शिकायतें थी। हम कौन-सा फैक्टरी की मल्कियत में हिस्सा चाहते थे। परन्तु ऐसे लोगों का हमारी बात के विरुद्ध एक बड़ा तर्क यह था कि फैक्टरी की तरफ से स्टाफ को पहले ही बहुत-सी सुविधाएँ प्राप्त हैं। जैसे, हायर-पर्चेज-सिस्टम के तहत आप सिवाय औरत के, अपनी तनख्वाह की हद में, कोई भी चीज खरीद सकते थे। फिर कैण्टीन की सुविधा, फेयर-प्राईस-शाप की सुविधा, और फिर एडवांस प्राप्त करने की सुविधा। और क्या चाहिए? ये क्या कम सुविधाएँ थीं? ऐसी दलीलें देने वाले लोग वही थे, जो कि अन्दर से निहायत कायर, दब्बू और कमजोर थे और वे हमें इस-लिए समर्थन देने को तैयार न थे कि कहीं कुछ गड़बड़ हो गयी तो उनकी ये न्यूनतम सुविधाएँ, ये छोटे-छोटे सुख भी छिन जाएँगे। इन लोगों को इस असलियत की समझ न थी कि ये सब सुविधाएँ मैनेजमेण्ट के जाल थी, मजबूत फंदा। ये सुविधाएँ न थी, ये ऐसे टुकड़े थे, जो पालतू कुत्तों के सामने फेंके जाते हैं, ताकि वे गुलाम बने रहें। मैनेजमेण्ट तो चाहता ही था कि वे लोग हमेशा उधार और किस्तों को चुकाने के चक्कर में ही फँसे रहें ताकि स्वतन्त्र रूप से कुछ सोचने की उनकी शक्ति ही क्षीण हो जाए और वे कभी भी यह समझ न सकें कि मैनेजमेण्ट उनका शोषण कर रहा है। हम अपने साथियों को अपनी यथार्थ स्थिति और कमजोरियों के बारे में बताते। यानी कि हम लोगों को हमेशा उल्लू और मूर्ख नहीं बने रहना चाहिए। कुछ लोगों ने हमारी बातों को समझना शुरू कर दिया था और वे तैयार हो रहे थे। इसी तरह लोगों में काम करते हुए तीन-चार महीने बीत गये। मगर अचानक····अचानक बीच में ही कुछ गड़बड़ा गया। किसी जासूस को हमारा कार्यक्रम मालूम हो गया और उसने मैनेजमेण्ट को आगाह कर दिया। चेतनकुमार, जो कम्पनी की तरफ से स्टाफ-क्लब का स्थायी सेक्रेटरी था, मुझे कनखियों से घूरने और होंठों में मुस्कराने लगा।····

मुझे शर्मा के शब्द फिर याद आ गये। जब शर्मा ही पीछे हट गया तब दूसरे लोगों से क्या उम्मीद की जा सकती थी? परिस्थिति तो किसी की भी ठीक नहीं थी। विवश तो हर कोई था। जब सबसे आगे बढ़ा

हुआ शर्मा हो अपनी व्यक्तिगत समस्याओं को लेकर ठण्डा हो गया था, अपने तमाम विचारों को एक सेकण्ड में बदल दिया था और रो भी दिया तो बाकी लोगों के बारे में क्या कहा जा सकता था ? फिर भी उनसे मिल लेना मैंने जरूरी समझा ।

मैं झट से बिस्तर से उठ खड़ा हुआ । अब कुछ तो करना ही था । या तो अपना यह काम करना था निडर होकर, सीना तानकर, या सुबह माफी माँग लेनी थी या बिना किसी को बताये, बिना इस्तीफा दिये दूसरे शहर चले जाना था ।

सबसे पहले मैं रामकुमार पंगासा के घर पहुँचा । वह घर पर ही था । उसने मुझे बैठाया और अपनी पत्नी से चाय के लिए कहा ।

मैंने शुरू किया—तुम्हें आज की घटना का पता....

—हाँ—उसने सीधे और तुरन्त कहा—मेरी सलाह है कि तुम माफी माँग लो । इसके सिवा और कोई रास्ता नहीं है । तुम्हें सिन्हा साहब से इस तरह बात नहीं करनी चाहिए थी । मैंने तो जब से सुना है, परेशान हूँ कि कहीं तुम्हारे साथ मैं भी न पीस दिया जाऊँ । तब क्या होगा ? आजकल नौकरी कहाँ मिलती है ? अभी थोड़ा-बहुत मिल तो रहा है, किसी तरह गुज़ारा तो हो रहा है, दिन तो कट रहे हैं । भाई, मैं तो तुम्हें भी यही राय दूँगा कि तुम....

आधा घण्टे तक मैं रामकुमार से बहस करता रहा । मगर सब फ़िज़ूल रहा ।

फिर मैं कुन्दनलाल साहनी के पास पहुँचा । उसने कहा—तुम ऐसी बेवकूफी कर सकते हो, मैं तो सोच ही नहीं सकता था । तुम खुद तो मरोगे ही, साथ में हम लोगों को भी मार दोगे । तुमने क्या समझकर सिन्हा साहब से ऐसी बातें कीं ? तुम्हारी क्या ताकत है ? क्या तुम समझते हो कि बाबू तबका अपनी नौकरी खतरे में डालकर तुम्हारा साथ देगा ? फिर अभी तो तुम्हारा कोई संगठन भी नहीं बना है, कोई यूनियन भी नहीं है । तुम्हें ऐसे दुस्साहस से काम नहीं लेना चाहिए था, तुमने यह बहुत भारी गलती

की है। तुम सिनहा साहब के पास जाकर माफ़ी माँग लो। शायद वे तुम्हें माफ़ कर दें। और कोई चारा नहीं है।

अमरनाथ सीकर के यहाँ भी मुझे ऐसी ही बातें सुनने को मिलीं। फिर मैं किसी के यहाँ न गया। किसी से भी मिलना बेकार था। अब कोई भी मेरे साथ न था। बल्कि वे तो यह भी चाहते थे कि मैं खुद भी अपना साथ छोड़ दूँ, अपना काम और विचार छोड़ दूँ, शून्य हो जाऊँ, और अपनी नौकरी बचा लूँ। याने कि मैं सीधे माफी माँग लूँ। मेरे लिए अब सोचने की यही बात थी कि मैं क्या करूँ? माफी माँग लूँ या लड़ूँ?

काफी देर तक सोचने के बाद आखिर मैंने निर्णय लिया कि मैं लड़ूँगा, चाहे जो हो। दरअसल मैं ऐसी स्थिति का मुकाबिला करने की बात सोच ही न पा रहा था कि मैं माफी माँगकर, सिर झुकाकर अपने उन सहकर्मियों के बीच चलूँ, जिनके साथ मैंने संगठन की बातें की थीं, मैनेजमेंट से लड़ने की बड़ी-बड़ी बातें की थीं, जिन्हें बार-बार यह आश्वासन दिया था कि मैं उनके हित के लिए अपनी जान दे दूँगा। फिर उसी सिनहा के सामने सिर झुकाना, जिसे मैंने तिनके की तरह फूंक कर उड़ा दिया था, मेरे लिए मौत से भी बदतर चीज़ होती। एक बार जब मैंने लड़ने की बात तय कर ली तो पता नहीं कैसे मैंने अपने अन्दर एक ताक़त महसूस की। यह ताकत वैसी ही थी जो आदमी में उस समय आती है जब वह लड़कर मरने के लिए तैयार हो जाता है। एक बात और भी मेरे दिमाग में थी। वह यह कि वे लोग मुझे आसानी से निकाल नहीं सकेंगे। मुझे निकालने के लिए उनके पास कोई ठोस वजह न थी। संगठन बनाने का जो काम मैं कर रहा था, वह कोई जुर्म नहीं था। वे कोई और वजह पैदा कर सकते थे, उनके लिए कुछ भी मुश्किल नहीं। वे मुझे फाँसने के लिए कुछ भी कर सकते थे। जो हो देखा जाएगा, मैंने सोचा, अब मैं खुलकर संगठन का काम करूँगा, मिटिंगें करूँगा, पर्चे बाटूँगा....

दूसरे दिन मैं अपनी मेज पर बैठा ही था कि चपरासी ने मेरे पास आकर साहब का सलाम बोला।

सिनहा हमेशा की तरह एक-डेढ़ मिनट तक चुप रहा। फिर उसने कहा—आपको कल की बातों के बावजूद मैंने फिर आपको बुलाया है, क्योंकि मेरा ख्याल है कि कल आप किसी कारण गुस्से में थे।

मैं क्या कह सकता था? मैं चुप रहा।

वह कुछ देर कुछ सोचता रहा। फिर कहा—अब आपका क्या इरादा है?

मैंने कहा—आप मुझसे डरते क्यों हैं? आप मुझे आसानी से निकाल सकते हैं!

उसने कहा—इससे क्या फायदा होगा? इसी बात को लेकर तो मैं कल गौर करता रहा। आपकी रोजी छीनकर हमें क्या मिलेगा?....आप कल रात कुन्दनलाल साहनी, रामकुमार पंगासा, अमरनाथ सीकर, देवेन्द्रपाल शर्मा के पास गये थे न? उन्होंने आपसे क्या कहा?

मैं हैरान नहीं हुआ। सिनहा के लिए एक-एक बात जान लेना सम्भव था। यह मैं जानता था। मैंने सिर्फ इतना कहा—आपको तो इस खबर से खुश होना चाहिए।

सिनहा ने धीरे से कहा—इसमें मेरे लिए खुश होने की कोई बात नहीं है। हाँ, आपके लिए सोचने की कुछ बात जरूर है। आप एक बहुत अच्छे कर्मचारी हैं। आप में दूसरे भी गुण हैं। मैं जानता हूँ कि आपकी योग्यता को देखते हुए आपकी तनख्वाह बहुत कम है। मैं इस विषय पर सोचता रहा हूँ। कल भी मैंने मैनेजमेंट से बात की थी। आपको यह जानकर खुशी होगी कि मैनेजमेंट ने मेरी सिफारिश मान ली है और आपकी तनख्वाह पचास रुपये बढ़ा दी गयी है। अब आप जाकर काम कीजिए। धन्यवाद!

मैं चला आया। मैं चकित था कि ऐसा कैसे हुआ। मेरे लिए एक रास्ता निकल आया था। लेकिन मेरे अन्दर तो एक चीज छिपकली की तरह उलटी होकर बिछ गयी थी। यह कोई कर्तव्य-भावना नहीं थी, कल्याण-भावना भी नहीं थी, यह केवल अपना सिर उठाये रखने की बात थी। मैं जानता था कि अगर मैंने अपना सिर झुका लिया और पचास रुपये की

तरक्की स्वीकार कर ली तो सब यही कहेंगे कि मैं अपना उल्लू सीधा करने के लिए ही यह सब कर रहा था। यह मुझे किसी भी हालत में सह्य न था। मैं तो सब की भलाई के लिए काम कर रहा था।

सारी दुनिया मुझे बेवकूफ कह सकती है। महा-महा-महा बेवकूफ! भला ऐसा अवसर किसे मिलता है? मुझे तो सिनहा का शुक्रगुजार होना चाहिए था कि उसने मेरी गाली के बावजूद मुझे तरक्की दी थी। मुझे तो खुश होना चाहिए था।

मैं अपनी मेज पर बैठा काम करता रहा और सोचता रहा। पास-पड़ोस का कोई भी मुझसे आँखें न मिला रहा था। शायद मेरी तरक्की की बात किसी को मालूम न थी। लेकिन मैं चाहता था कि उन्हें मालूम हो जाए और वे मुझसे पूछें और मैं उनसे कहूँ कि मैंने उसे ठुकरा दिया है। मैं स्वार्थी और मक्कार नहीं हूँ।

शाम को छुट्टी हुई तो फाटक पर आकर मैंने अचानक भाषण देना शुरू कर दिया। मेरी इस योजना के पीछे सिर्फ़ एक ख्याल था कि मेरी निडरता और साहस देखकर शायद कुछ और लोग भी निडर और साहसी होकर मेरे साथ मिल जाएँ, चाहे भावुकतावश, चाहे और किसी भावना से प्रेरित होकर।

लेकिन मेरी इस योजना से कुछ भी फ़ायदा हो, इसके पूर्व ही एक नयी चीज़ पैदा हो गयी। मैंने देखा कि मेरे चारों ओर मैनेजमेंट के जासूस ही आ खड़े हुए, मेरे उन साथियों में से कोई भी न आया, जिनसे मैंने पहले बातें की थीं। एक तरह से मेरे दुश्मनों ने मुझे घेर लिया था। वे मुझे घूर रहे थे। लेकिन मैं बोलता रहा, बोलता रहा। मुझे विश्वास था कि लोग डर के मारे मेरे साथ भले ही खड़े न हों, मेरी आवाज़ जरूर उनके कानों में पड़ेगी और असर करेगी। आदमी इतना बहरा तो कभी भी नहीं हो सकता कि वह अपनी भलाई की आवाज़ न सुने। मैं बोलता रहा, बोलता रहा, जब तक कि फाटक पर सन्नाटा न छा गया।

रात को मैं अपने कमरे में पड़ा था। मुझे नींद न आ रही थी। हर

क्षण मुझे लगता था कि मेरे दुश्मन किसी भी क्षण आ धमकेंगे और मेरी टाँग, बाँह या सिर तोड़ देंगे। मैं किसी भी तरह बच नहीं सकता था। लेकिन यह....यह तो मैं सोच ही न सकता था, कि वे मुझे जकड़कर यहाँ लाएँगे और मेरे साथ इतनी भयंकरता से पेश आएँगे और मुझे जिन्दा फर्नेस में झोंक देंगे....

मैं बैठा-बैठा थक गया था। मैंने आँखें खोल दीं। सामने दरवाजा था। उसके ऊपर का बल्ब जल रहा था। मैंने दीवारों को फिर देखा। वे उतनी ही काली थीं। भयानक रूप से काली। और चमक रही थीं। मैंने सोचा, अभी तो करीब पौन घण्टे के करीब वक्त गुजरा होगा। अभी तो काफी समय बाकी पड़ा है। अब क्या किया जाए? क्या सोचा जाए? अब कुछ भी सोचने का क्या मतलब हो सकता है?....कि अचानक ही मुझे ख्याल आया, मैं बोल तो सकता हूँ, आवाज तो दे सकता हूँ, मेरी आवाज़ को गूंजने से कौन रोक सकता है?

मैं खड़ा होकर बोलने लगा। मेरे शरीर में पीड़ा भरी थी लेकिन मेरी आवाज़ में जिन्दगी की धड़कन थी। मेरे सामने जैसे हजारों का हुजूम खड़ा था और मैं बोल रहा था, बोलता जा रहा था कि अचानक मेरा पाँव जमे हुए खून के एक लोंदे पर पड़ गया। खून के उस बड़े लोंदे के चारों ओर चीटियाँ इकट्ठी हो गयी थीं। मुझे हैरानी हुई कि मेरा खून इतना मीठा कैसे हो गया। मेरा खून अगर इतना ही मीठा होता तो क्या मैं सिनहा की बात [redacted] मान गया होता? नहीं-नहीं, यह मेरा खून नहीं था। अच्छा हुआ, यह मेरे शरीर से निकल गया। इस विचार से मुझे बेहद खुशी हुई। वास्तविक खुशी। और मैंने फिर दूने जोश से बोलना शुरू कर दिया।

थके-हारे

सुबह-सुबह ही यह खबर सब लोगों में फैल जाती है कि इस एरिया में एक नयी लड़की आयी है। तब वह वहीं था। उसने होटल के बेरा शम्भू से सुना। शम्भू दूसरे बेरा को यह खबर दे रहा था। तब उसे रोमांच हो आया। इस वक्त दस बजे थे।

इस वक्त दस बजे थे, यह केवल उसका अंदाज था। बजने को कुछ भी बज सकता था, लेकिन यह सच है कि इस वक्त दस ही बजे थे। उसने किसी से पूछा नहीं था, उसके पास अपनी रिस्ट-वाच भी नहीं थी, बल्कि तब उसने होटल की दीवार-घड़ी की ओर देखा था।

वह अपने इस अंदाज के ठीक निकलने पर प्रसन्न नहीं हुआ था। वह किसी बात पर प्रसन्न कभी नहीं होता, बल्कि प्रसन्नता के नाम पर हमेशा उसे हलका-सा रोमांच हो आता है। रोमांच का हो आना कोई बुरा नहीं, परन्तु प्रसन्नता की बजाय रोमांच का हो आना अजीब जरूर है। ऐसा सिर्फ उसी के साथ है। और हर बार की रोमांच-चेतना पर वह चकित भी होता है। ऐसा क्या है, वह प्रसन्न होने की बजाय केवल रोमांचित ही हो पाता है! क्यों? प्रेम कहता है, सोचना मना है। इसलिए वह प्रश्नों के चक्कर में नहीं पड़ता और कुछ नहीं सोचता। प्रेम कहता है, खाओ-पिओ और मौज उड़ाओ।

परन्तु कई बार ऐसा होता है कि, कुछ भी न सोचने के बावजूद जब वह किसी बात से कभी रोमांचित होता, तो मुसकराता भी नहीं। यानी न तो वह प्रसन्न हो पाता है और न ही रोमांचित। यानी वह कुछ नहीं हो पाता। और हर बार (जब भी, ऐसा होने पर भी) वह चकित रहता है। वक्त का अंदाजा ठीक निकलने को उसकी रोमांच-स्थिति बहुत कम देर के लिए रही। बहुत सारी बातें उसे बहुत ही कम समय के लिए प्रभावित अथवा उत्तेजित कर पाती हैं। बात सुनते ही एक तेज किस्म की उतावली उसके पेट से ले कर गले तक जरूर फैल जाती है, लेकिन कुछ ही क्षण पश्चात् उसकी उस बात के प्रति प्रतिक्रिया होती है, यानी अपनी खुद की सोच से वह तुरन्त ही अघटित-सा बन जाता है। ऐसा हमेशा ही हुआ है। कुर्सी पर बैठे रहने के कुछ सेकंड पूर्व तक उस नयी लड़की को देख लेने की तीव्र इच्छा उसके मस्तिष्क को मथ रही थी, लेकिन उठने-उठने तक फिर सब कुछ शांत था।

उसे पता नहीं, इस बात से शुरू से ही क्यों विरोध है कि जिस चीज को सभी सोचें, वह आम भाषा वाली चीज होगी, यानी कॉमन, और उस अवस्था में खुद को भी झोंकता हुआ वह नाचीज नहीं होना चाहता। मतलब कि जैसा सभी सोचें, या जिस वस्तु को सभी एक साथ ग्रहण करें, वह बात उसके लिए उतनी महत्त्वपूर्ण नहीं बन पाती, जब तक कि उस बात को वह एक हो कर अपना न कर ले। यह उसका अपना सिद्धांत है। यह गलत और दूसरों को नापसंद भी हो सकता है। अपने इस सिद्धान्त से वह सिनिक और पागल भी कहा जा सकता है। लेकिन उसे यह पसन्द है। और उसकी पसन्द केवल उसकी पसन्द है। और वह एक व्यक्ति है।

उसे पता था कि जब उस नयी लड़की के इस एरिया में आने की खबर फैल गयी है, तो बहुत सारे लोग उसे देखने आ रहे होंगे और उस लड़की के इर्द-गिर्द और यहाँ-वहाँ खड़े होंगे। वह जब होटल से बाहर निकला, तो ठीक ऐसा ही था। इस एरिया के रिक्शा-चालक, आस-पास के होटलों और रेस्तराओं के बेरा लोग और नौकर, कुली, रेलवे-क्लीनर, भंगी, मोची,

कुछ निठल्ले लोग, जरायम पेशा लोग, चरस पीने वाले, शराबी, चोर, स्मगलर, जेबकतरे, सब किस्म के अच्छे बुरे व्यक्ति वहाँ खड़े थे। वे सब खड़े इस ढंग से थे, दो-दो तीन-तीन के ग्रुपों में, कि कोई उन्हें इशारा नहीं कर सकता था कि तुम लोग उस लड़की को देखने आये हो....पानों को थूकते हुए, सिगरेटों के लम्बे-लम्बे कश खींचते-फेंकते हुए, हँसते और बातें करते और गाली-गलोज करते हुए। उसका खयाल था कि यह सब लोग बड़े आर्टिस्ट हैं। वह हलका-सा मुसकरा दिया।

वह जानता था कि इस एरिया में इस नयी लड़की के आने से यहाँ के ऐसे ही लोगों में बेहद प्रसन्नता छा गयी है। उसे भी याद पड़ता है कि जैसे काफी दिनों बाद कोई नयी लड़की इस एरिया में आयी है। उसका खयाल था कि रात साढ़े ग्यारह बजे वाली बम्बई एक्सप्रेस से यह आयी है, क्योंकि रात साढ़े दस तक वह खुद भी यहीं पर था और तब तक इस लड़की की इस एरिया में कोई खबर नहीं थी। गाड़ी क्योंकि वाया-अमृतसर आती है, हो सकता है, यह अमृतसर से ही आयी हो, या यह भी सम्भव है कि सीधी बम्बई से ही आ रही हो। उसका खयाल था, यानी यह निश्चित था कि यह लड़की बाहर से इस शहर में पहली बार ही आयी है, नहीं तो शहर में घुसने के बजाय यहीं न रुक जाती, यानी इन लोगों के चंगुल में। वह जानता है कि इस एरिया में कोई भी नयी लड़की आ कर बिना भारी पेट लिये वापस नहीं जा सकती। वह जानता है कि हर नयी लड़की का सभी इस्तेमाल करेंगे। लेकिन बारी-बारी। एक बार तो वह भी....खैर, वह चीज बहुत अच्छी थी। इस एरिया के ऐसे ही लोगों में इतना संगठन है कि कोई झगड़ा नहीं होगा। सबकी तसल्ली होगी। पुलिस वाले भी....

उसे होटल से बाहर आया देख कर होटल का मालिक, उसका मित्र शामलाल उसकी तरफ देख कर मुसकराया। उसका मित्र उसी की उम्र का था, बीस-इक्कीस का। उसके मुसकराने का मतलब था कि देखो, यह

इतने सारे लोग कितनी ऐक्टिंग से उस लड़की को देखे जा रहे हैं। इसका मतलब था कि जैसा इन लोगों को आर्टिस्ट समझता हुआ वह सोच रहा था, शामलाल का विचार भी ठीक वही है। शामलाल की मुसकराहट के उत्तर में वह भी मुस्कराया। अभी तक वहाँ कुछ लोग उस लड़की को देखने आ रहे थे। हाँ, इतना जरूर था कि कुछ लोग, जो वहाँ काफी देर से खड़े होंगे, साथ-साथ वापस भी जा रहे थे, शायद अपने-अपने कामों पर, शायद जल्दी ही फिर वहाँ लौट आने के विचारों के साथ। कुछ लोग ऐसे भी जरूर थे, जो वहाँ पर शुरू से ही बैठे या खड़े हुए होंगे और वे इस मुद्रा में थे कि अभी और भी काफी देर तक वहाँ जमेंगे।

होटल के साथ वाली सड़क पर ट्रैफिक वैसे-का-वैसा था। कारों, स्कूटरों, मोटरों, रिक्शाओं, साइकलों, ट्रकों के अलावा भी जो लोग सड़क पर पैदल आ-जा रहे थे, वे भी नहीं जान सकते थे कि सड़क के उस ओर बैठी लड़की को सड़क के इस ओर बैठे या खड़े इतने सारे लोग देख रहे होंगे। यह इन आर्टिस्टों की तारीफ थी। उसने होटल के शेड में ही खड़े-खड़े सड़क के उस तरफ फुटपाथ पर देखा। गर्मियों की धूप में जीप-फ्लैश-लाइट के बड़े विज्ञापन-बोर्ड की थोड़ी-सी छाया में पैंतीस-छत्तीस साल की वह लड़की बैठी थी। उसकी गोद में एक-डेढ़ साल का बच्चा भी था। वह पैंतीस-छत्तीस की होगी और वह बच्चा एक-डेढ़ साल का ही होगा, यह सिर्फ उसका अन्दाजा था। उसका यह अन्दाजा गलत भी हो सकता था। इस वक्त वहाँ जब काफी लोग उसे एक साथ देख रहे थे, उसने तय किया कि जब इनकी तादाद बहुत कम रह जायेगी, तब वह करीब खड़ा हो कर इस लड़की की उम्र ठीक तरह से जान लेगा। अभी वह इन लोगों में अपने को खड़ा करके उस लड़की को गौर से नहीं देख सकता, यह बात नहीं। वह सारे दिन इन्हीं लोगों में खाता-पीता उठता-बैठता है, परन्तु खुद के अध्ययन में वह किसी के भी वजूद को क्यों अपने पर हावी होने दे। परन्तु ऐसा उसका खयाल था कि इस लड़की की उम्र पैंतालिस से किसी भी हालत में अधिक नहीं, और पैंतालिस तक के ऐसे जीव को इस्तेमाल के लिए जायज

माना जाता था, यह इन लोगों का आपस में मौन समझौता था और इसीलिए इस उम्र तक के जीव को औरत न कह कर लड़की ही बताया जाता था, यह इन लोगों की अपनी तसल्ली हो सकती है।

शामलाल उससे पूछता है—तुमने चाय वगैरह पी ली क्या ?

—हाँ। मैंने तुम्हें देखा, तुम पता नहीं कहाँ गये हुए थे, फिर मैंने पी ली।

इसके पश्चात शामलाल अन्दर चला गया और आधे ही मिनट पश्चात् तेल-साबुन-तौलिया लिये लौट आया और बिना कुछ कहे स्टेशन के रेलवे स्नान-गृह की ओर तेजी से भाग गया। उसने यही ठीक समझा कि शामलाल के आने तक होटल के अन्दर आ कर बैठे। बाहर धूप भी काफी तेज थी। एक बार फिर उस लड़की की तरफ नजर दौड़ा कर वह होटल के अन्दर आ गया और बेरा शम्भू से कहा कि एक चारमीनार का सिगरेट ले आये। इसी वक्त रेलवे का एक ट्रेन-क्लीनर अन्दर आया और उससे पूछने लगा—क्या नम्बर निकला आज ?

यह किशन था। उसका मित्र। तीस-बत्तीस की उम्र। जेट-ब्लैक रंग। किशन के साथ उसकी मित्रता ऐसे ही कुछ ज्यादा हो गयी थी। शायद इसका यह कारण रहा हो कि वे इकट्ठे ही बैठ कर चरस पिया करते थे और रेलवे लाइनों के परे, जहाँ किशन का झोपड़ीनुमा घर है, जुआ भी खेला करते थे। परन्तु दूसरे कुछ लोग कहते हैं कि किशन की पत्नी के कारण ही उसने उससे मित्रता बढ़ा रखी थी, जोकि गलत है। वैसे यह जरूर सच है कि किशन की पत्नी बहुत खूबसूरत है और उसका चेहरा भी काफी सेक्सी नजर आता है। वह सोचता है कि यदि वह चाहता, तो किशन की पत्नी को फाँस भी सकता था। एक दिन उसी की झोपड़ी में जुआ खेलते हुए झगड़ा हो जाने पर रेलवे के कुछ पड़ोसियों ने बाद में वहाँ अफवाह भी फैला दी थी कि किशन की पत्नी से उसका नाजायज सम्बन्ध है और इसी लिए वह बार-बार वहाँ आता है और ज्यादा टाइम लगाता है। लेकिन वह बाद में भी वहाँ बराबर जाता रहा है और किशन को कभी इस पर

ऐतराज नहीं हुआ। वे दोनों अभी तक एक-दूसरे को अपना मित्र मानते आ रहे हैं।

लेकिन इस वक्त वह क्रोधित हो उठा—मैंने सबको बता रखा है, तुम्हें भी कई बार कहा है कि जब मैं इस होटल में बैठा होऊँ, तो नम्बर-वम्बर जैसी कोई भी बेहूदा बात यहाँ नहीं कही जानी चाहिए!

किशन पास की कुर्सी पर बैठ गया। बोला—तुम मुझ पर भी नाराज होने लगते हो....!

—किशन, तुम बात को नहीं समझते। अगर तुम मेरे मित्र हो, तो शामलाल भी तो मेरा मित्र है, और मैं नहीं चाहता कि मेरे कारण उसके बिजनेस में कोई नुकसान हो। इस नम्बर-वम्बर के सिलसिले में मैं कभी भी पकड़ा जा सकता हूँ। होटल के बाहर मैं पकड़ा जाता हूँ, तो कोई बात नहीं, लेकिन अगर होटल के अन्दर पुलिस मुझे पकड़ती है, तो इससे लोग समझेंगे कि होटल में यह बिजनेस होता है और खुद शामलाल इस काम में शामिल है। खामखाह उसकी बेइज्जती और बदनामी क्यों हो। इसीलिए मैंने सबसे कह रखा है कि होटल के अन्दर मेरे साथ कोई ऐसी बात न करे।

शम्भू सिगरेट ले आया था। उसे उसने जला लिया और शम्भू से एक सिगरेट किशन के लिए ले आने को कहा। किशन इस दौरान चुप था, तब उसने कहा—किशन, तुम शायद नहीं जानते, शामलाल से मेरी दोस्ती आज की नहीं, जब मैं सातवीं जमात में पढ़ता था, तब की है। उसके बाद तीन साल मैं और स्कूल में रहा, मैट्रिक तक। उसके बाद चार साल कालेज में रहा, बी० ए० तक। उसके बाद भी डेढ़ साल और हो गया है और मैं तभी से इस होटल में लगातार आ रहा हूँ। यह गंदा काम तो मैंने बड़ी मजबूरी की हालत में छह-सात महीने पहले शुरू किया है, तुम जानते भी हो। वर्ना जिस अच्छे खानदान से मैं हूँ और जिस अच्छे खानदान से शामलाल है..........मेरे खानदान में तो कोई सिगरेट तक नहीं पीता।

लेकिन अब इसी गन्दे काम से रोज को तीस-पचास रुपये की आमदनी हो जाती है। ऐसे गन्दे कामों में पैसा बहुत होता है, यह मैं मान गया हूं, और इसीलिए इस ओर आकर्षित भी हुआ था। लेकिन किशन, तुमने भी तो मुझे एक बार कहा था न कि मेरे इस काम के शुरू करने के पहले भी तुमने मुझे इसी होटल में कई बार देखा था और तब मैं इतना बदमाश न लगता था। किशन, बताओ, क्या अब मैं बहुत बड़ा बदमाश लगता हूं? वह हँस दिया।

किशन भी मुसकरा दिया। उसे शायद जल्दी थी। शायद वह ड्यूटी पर था। वह उठ खड़ा हुआ। शम्भू इसी समय सिगरेट ले आया, जिसे मुँह में रखते हुए उसने उसके जलते सिगरेट के साथ सुलगा लिया। एक-दो कश खींच-छोड़ कर उसने कहा—तुम आ रहे हो क्या''' सिगरेट भर कर रखूं?

—हाँ, अभी दस मिनट में मैं आता हूँ।

—तो मैं नम्बर दो प्लेटफार्म पर हूँ आज। तुम आ जरूर जाना। समझ गये न....

किशन चलता-चलता फिर रुक गया और मुसकराता हुआ आहिस्ता-से बोला—जिस काम से आया था, वह तो भूल ही गया! बताओ न, क्या नम्बर निकला आज?

वह भी मुसकरा दिया और किशन की सफेद आँखों में देखता हुआ बोला—अठहत्तर।

किशन का जेट-ब्लैक चेहरा और भी जेट-ब्लैक हो गया। फिर धीमी आवाज में उसने कहा—किसी का निकला भी आज?

—बड़ा किसी का नहीं। अन्दर (अन्दर) निकला है भीमे, तेलो, राघव और नौ-दस दूसरे लोगों का।

—हमने तो अक्सर सात लगाया था, साला एक बढ़ गया!

इसी वक्त शामलाल गुनगुनाता हुआ अन्दर आ गया। किशन उसको 'बाबूजी नमस्ते' कहता हुआ बाहर निकल गया।

शामलाल ने अपनी काउंटर वाली दराज से शीशा और कंघा निकाल लिया और उन्हें लिये-लिये उसके पास वाली कुर्सी पर बैठ गया। शीशा मेज पर टिका दिया, जिसमें अपने बालों को देख कर उनमें कंघा फेरने लगा।

कंघा कर चुकने पर कंघे को भी मेज पर रखते हुए अपने बालों में निचुड़ आये पानी को शामलाल ने अपने दोनों हाथों से पोंछ दिया और फिर हाथों में लगे पानी को नीचे झटकते हुए कहा—यार, इस रेलवे स्नान-घर का बड़ा सुख है।

शामलाल ठीक कह रहा है, वह जानता है। उसने कहा—'हाँ, तुम्हारी बात ठीक है।' केवल स्नान-घर ही नहीं, लेट्रिन वगैरह की भी इन लोगों को बहुत सुविधा है। जिस एरिया में शामलाल का होटल और कुछ दूसरी दूकानें तथा पाँच-छह रेस्तरां और कुछ चाय के स्टाल हैं, वह एरिया रेलवे स्टेशन के आउटर गेट के बिलकुल बाहर पड़ता है। रेलवे के सभी कुली, क्लीनर, भंगी तथा मैकेनिक लोग इन्हीं कुछ दुकानों और स्टालों पर आ कर बैठते हैं, इसलिए दोनों तरफ के लोगों का आपस में खूब परिचय है। इसी कारण इस आउटर गेट वालों को ही केवल रेलवे स्नान-गृह और लेट्रिन वगैरह की खुली आजादी है। इसके अलावा भी स्टेशन पर वे जहाँ मरजी हो, जायें-आयें। यह सुविधा इनर गेट के बाहर वाली दुकानों के लोगों को नहीं। इसका स्पष्ट कारण यही है कि उन दुकानों पर रेलवे का कोई आदमी बैठता नहीं। बैठता इसलिए नहीं कि वहाँ उन्हें चरस पीने, या जुआ खेलने, या हँसी-मजाक करने, या दड़ा का नम्बर लगाने, या दूसरी बदमाशियाँ करने की कोई आजादी नहीं। उस गेट के सामने एक तो मिलेट्री हेडक्वार्टर का गेट है, दूसरे जम्मू-कश्मीर और डल्हौजी कुल्लू जाने वाली बसों का अड्डा है, तीसरे वहाँ पर रेलवे के बाबू और अफसर लोग हर वक्त घूमते रहते हैं। इसके अलावा शहर के तमाम जेबकतरे, बदमाश, जुआरी आउटर गेट पर ही बैठते हैं। (और इसीलिए आये दिन शहर की पुलिस यहाँ छापे भी मारती रहती है।) रिक्शा-चालकों को भी

यही जगह ज्यादा पसंद है, क्योंकि रिक्शे खड़े करने के लिए गेट के अंदर काफी खुली जगह भी है, जहाँ बहुत सारे साधु भी बैठे रहते हैं, भिखारी लोग भी और नाई भी। इसीलिए रेलवे के चतुर्थ श्रेणी के वर्कर भी अपने जैसे ही इन्हीं लोगों में बैठना अधिक पसंद करते हैं, जहाँ वे अपनी बात आराम से कह सकें और किसी को ऊँच-नीच का वहम न हो।

शामलाल को शायद भूख अधिक लगी थी। वह सामने पड़े मर्तबान में से पाँच-छह बड़े बिस्कुट उठा लाया। बोला—खाओ।

उसने एक बिस्कुट को प्लेट में ही आधा करते हुए मामूली-सा अपने दाँतों में काट लिया। उसने कहा—शाम, पता नहीं, बिस्कुट खाते ही हमेशा मेरे दिमाग में यह विचार क्यों आ जाता है कि मैं बहुत अमीर हो गया हूँ! वह थोड़ा-सा हँसा भी।

—यह चीज है तो अमीर लोगों की ही। और फिर अब तुम भी तो अमीर हो! चालीस-पचास रुपये तुम रोज बना लेते हो! वह चुप रहा और जिस बिस्कुट को उसने आधा प्लेट में तोड़ दिया था, उसे भी उठा कर खाने लगा। शामलाल फिर बोला—ईश, अब कब तक तुम यह धंधा करोगे? तुम्हें देख कर मैं बहुत दुखी रहता हूँ।

—मैं खुद भी दुखी हूँ ही, इस गंदे काम से चालीस-पचास रुपये रोज बना लेने से मैं सुखी नहीं हूँ। इस काम के लिए और आपस में मेल-जोल बनाये रखने के लिए मुझे कुछ लोगों के साथ चरस पीनी पड़ती है, जुआ भी खेलना पड़ता है, भंगियों में बैठ कर खाता-पीता हूँ, सारे दिन अनपढ़ लोगों में घूमता रहता हूँ। मैं सचमुच ही कोई कम दुखी नहीं हूँ। लेकिन अब कुछ महीने और रह गये हैं। मैंने जब यह गंदा काम शुरू किया, तो तुम्हें तो पता ही है कि यह सोच कर किया था कि एक साल से अधिक इस काम में न पड़ूँगा, तब तक जितना पैसा इकट्ठा हो जायेगा, उसी से फिर कोई ढंग का काम शुरू कर दूँगा। और अब इस काम में पड़े हुए मुझे छह महीने बाईस दिन हो गये हैं, यानी पाँच महीने आठ दिन अभी और हैं।

शामलाल कुछ नहीं बोला। वह फिर कहने लगा—जिसके पास दडा के पैसे जमा होते हैं, वह चरस का भी नाजायज कारोबार करता है। उसने मुझे पहले भी कहा था कि तुम फिफ्टी परसेंट पर चरस की गोलियाँ अपने इलाके में बेच लिया करो। अब मैं सोच रहा हूँ कि आज या कल से यह काम भी शुरू कर दूँ। तुम्हें पता ही है कि इस स्टेशन पर ही लगभग दो सौ आदमी होंगे, जो रोज चरस पीते हैं, बाकी दूसरे आसपास के लोगों की बात अलग है। साधू लोग और रिक्शे वाले भी चरस पीते ही हैं। एक गोली चार आने की आती है। मतलब कि हर गोली में से मुझे दो आने बचेंगे। इस तरह से तीस-चालीस रुपये मैं रोज और बना सकता हूँ। इस तरह अगले पाँच महीनों में मेरे पास डबल रकम हो जायेगी और मैं आसानी से कोई अच्छा धंधा शुरू कर सकूँगा।

शामलाल कुछ नहीं बोला। वह फिर कहने लगा—मैं तुम्हारे चेहरे पर आये भाव को पढ़ सकता हूँ। यह बात तो सच ही है कि मैं कभी भी पकड़ा जा सकता हूँ। लेकिन उम्मीद है, तुम मेरी जमानत तो करवा दोगे। लेकिन शाम, अगर मैं एक बार भी पकड़ा गया, तो फिर इस शहर में मैं न रह सकूँगा। अभी तक तो किसी को भी पता नहीं है, फिर कालेज में मेरे साथ पढ़े लड़के और लड़कियाँ, प्रोफेसर लोग, बाऊ जी के यार-मित्र, शहर के दूसरे लोग, जो मुझे या बाऊ जी को जानते हैं....ओह, मैं उस वक्त की कल्पना नहीं कर सकता! एक अजीब किस्म का हॉरर महसूस होता है।

शामलाल के सोचने की पता नहीं क्या पृष्ठभूमि थी, मगर उसने इतना ही कहा—यह साला मुल्क कभी तरक्की नहीं कर सकता!

वह होटल से बाहर आया, तो वह लड़की अब भी वहीं बैठी थी और सडक के इस तरफ उस लड़की को देखने वाले लगभग उतने ही लोग खड़े थे, वैसी ही नाटकीय मुद्राओं में। उसे उस लड़की की उम्र अब भी उतनी ही लगी। पैंतीस-छत्तीस की। उसका चेहरा वह अब भी यहाँ से अच्छी तरह से न देख सकता था, लेकिन उसके नट्स और फीचर्स दढ़िया हैं,

ऐसा उस लड़की को दूर से ही देख कर वह अंदाजा लगा सकता था।

—हे बाबू ! हे दाता ! हे मालिक ! इस बच्चे की कसम, दो टिकड़े दे जा ! बच्चा दो रोज से भूखा है, मालिक ! हे बाबू ! हे साइकिल वाले बाबू ! हे पेंट वाले बाबू ...! उस लड़की की आवाज वह यहाँ सुन नहीं रहा था, लेकिन इतना वह समझ सकता था कि हर गुजरते व्यक्ति को देख कर वह यही कह रही है। उसने सामने चिरंजी की दुकान से सिगरेट लिया और उसे एक जलती लटकती रस्सी से सुलगा कर आउटर गेट में दाखिल हो गया।

आज धूप काफी तेज थी। धूप को महसूस करते ही उसे मराठी, बंगाली, मलयाली, मद्रासी, गुजराती, उड़िया, यू० पी० वाले और तमाम बड़े शहरों के और विदेशों के वे टूरिस्ट याद आ गये, जो यहाँ से गुजर कर कश्मीर, डलहौजी, कुल्लू आदि पहाड़ी स्थानों की ओर जाते हैं रोज, और वह ऐसा है कि पड़ोस में होते हुए भी वहाँ नहीं जा सकता और यहाँ धूप में मर रहा है। इस्माईल जमादार उसके पास से गुजरते हुए पूछता है—आज की खबर ?

—अठहत्तर।

थोड़ा और आगे आने पर फुटपाथ पर एक छोटे-से पेड़ की छाया में बैठा मौजी नाई उससे कहता है—बाबू, बाल बनेंगे ?

लेकिन वह उसको 'अठहत्तर' कह कर आगे बढ़ जाता है। दो-चार कदम आगे जाने पर उसे करमा भंगी की आवाज सुनायी देती है—ईस बाबू ! वह रुक जाता है। करमा भंगी दीवार के साथ लगा पेशाब कर रहा है।

करमा को कुछ दिन पहले सूजाक था। संभव है, अब भी हो। उसे उसके पास लगने से बचना चाहिए। लेकिन अभी कुछ दिन पहले उसने उसके साथ बैठ कर चाय पी थी और फिर चरस पी थी। जो हो गया, सो

हो गया, अब वह फिर ऐसा नहीं करेगा। करमा उसके पास आ गया—क्या दड़ा निकला आज ?

—अठहत्तर।

—मेरा है क्या ?

—नहीं।

—अक्खर भी नहीं ?

—तुमने तो अक्खर पाँच और छह लगाया था।

करमा भंगी निराश हो कर मुंह लटकाये आगे चला गया। तभी छम-छम-छम-छम छम-छम-छम-छम की तेज आवाज उसे सुनायी पड़ी। गाड़ी जब प्लेटफार्म से बाहर होती है, तो उसकी आवाज छक-छक-छक-छक छक-छक छक-छक की होती है। प्लेटफार्म पर आते ही उसकी यह आवाज क्यों बदल जाती है! मुसाहिब उससे कहता है—सुना है, आज अठहत्तर निकला है ?

—हाँ! कह कर वह स्टेशन के वेटिंग हॉल में पहुँचा, तो स्यालदा से आने वाली गाड़ी प्लेटफार्म पर लग चुकी थी और सवारियाँ उतरनी शुरू हो गयी थीं। टिकट-कलेक्टर उसे जानता था। वह उसके पास से गुजर कर प्लेटफार्म पर आ गया। उसका लक्ष्य नंबर दो था, जहाँ किशन चरस पीने के लिए उसका इंतजार करता होगा, लेकिन खड़ी गाड़ी से उतरती अजीब-अजीब शक्लों को देखने में वह खो गया। कितने ही किस्म के लोग थे, जिनमें कुछ विदेशी भी थे। एक डब्बा मिलिटरी के जवानों से पूरा-का-पूरा भरा हुआ था। वे सब मद्रासी थे। मद्रासी लोग बहादुर होते हैं, ऐसा उसने भारत-पाक युद्ध के दौरान सुना था। और भी कई तरह के लोग थे, जो उसके पास से गुजरते जा रहे थे। बंगाली, मराठी, यू० पी० वाले, गुजराती, विदेशी। वह समझ सकता था कि ये लोग आज इसी शहर में रुक कर कल कश्मीर, डल्हौजी, या कुल्लू की तरफ चले जायेंगे। उसे लगा कि उसके शरीर में कहीं कुछ टूट गया है और सब तरफ बिखर रहा है।

उसकी समझ के अनुसार इतनी महँगाई के जमाने में आधा प्रतिशत लोग भी ऐसे नहीं हैं, जो अपनी ईमानदारी की कमाई की वजह से इतने महँगे पहाड़ी स्टेशनों पर जा सकते हों। अकस्मात् उसे लगा कि वह बहुत-से ब्लैक-मार्केटियों, मुनाफाखोरों, चोरों और डाकुओं में फँस गया है। लेकिन फिर सोचा कि यदि उसे भी ब्लैक-मार्केट, मुनाफाखोरी, चोरी, डाके और भारी रिश्वत के चांस मिले होते, तो क्या वह खुद भी ऐसा न करता? वह अपने अंदर में इतना ईमानदार तो है ही कि उसे 'हाँ' शब्द तुरंत मिल गया। उसने निश्चय किया कि उसे इन जैसे लोगों से चिढ़ना नहीं चाहिए और एनजॉय करना चाहिए।

सिगरेट वाले वेंडर ने कहा—ईश बाबू, मेरा चार आने का अक्खर आठ निकला है, पैसे कब दोगे?

—मुझे पता है। पैसे थोड़ी देर बाद ले लेना।

तब सिगरेट वाला फिर कहने लगा—ईश बाबू, यह अक्खर कल मुझे साईं बाबा ने बताया था। उन्होंने तो दड़ा भी अठाईस बताया था, लेकिन निकला पचास बढ़ा कर। फिर वह रहस्य के-से ढंग से बोला—साईं बाबा ने इसके बाद का भी एक दड़ा बताया था।

—क्या?

—तुम किसी से कहना नहीं और तुम खुद भी आज लगा लेना.... नंबर छब्बीस है। हो सकता है, जैसे आज पचास बढ़ा कर निकला है, कल भी पचास बढ़ा कर छिहत्तर निकले। मैं तो आज तुम जितने पैसे दोगे, दोनों नंबरों और अक्खर छह पर लगा दूँगा।

—तब ऐसा करना, दोनों नंबरों को उलटा कर भी कुछ पैसे लगा देना। क्या पता, छब्बीस और छिहत्तर की बजाय बासठ या सड़सठ ही निकल आये। अक्खर दो और सात पर भी कुछ पैसे लगाना।

सिगरेट वाला कुछ सोचने लगा। फिर बोला—हाँ, तुम्हारी बात ठीक है।

फिर वह बुक-स्टाल पर पड़ी पत्रिकाओं पर अपनी दोनों कुहनियाँ टिका कर खड़ा हो गया। उसने बुक-स्टाल वाले दयानंद से कहा—आज कोई चटपटी चीज नहीं आयी!

—अभी तो बहुत सारी सवारियाँ गाड़ी से उतर रही हैं। देखते रहो, कोई-न-कोई बढ़िया चीज अवश्य नजर आयेगी!

इसी वक्त रेलवे के सिपाही शिवमंगल ने पीछे से उसके कंधे पर हाथ रखते हुए कहा—चाय-वाय पी ली क्या?

वह सीधा खड़ा हो गया—आओ, पियें। वे बुक-स्टाल के दायीं तरफ वाले टी-स्टाल पर आ गये। छोकरे से उसने कहा—चार बिस्कुट मीठे और दो चाय!

सिपाही शिवमंगल चाय पीते हुए बोला—तुमने बहुत दिनों से पिलायी नहीं! किसी दिन पिलाओ और साथ बैठ कर पियो!

वह कुछ सेकंड चुप रहा। फिर उसने कहा—कहीं थानेदार साहब को तो....

—उसकी बहन को....! तुम उसकी फिकर न करो! वह साला है तो कमीना, लेकिन जब तक हम हैं, तुम्हें डरने की कोई जरूरत नहीं!

—तो इसमें पूछने की क्या बात है! जब चाहो, पियो! सब पैसे तुम्हारे ही हैं!

वह सोचता है, वह कैसे ऐसे वाक्य बोलना सीख गया! वह कितना घटिया हो गया है! वह सारा दिन ऐसी शब्दावली इस्तेमाल करता है, जिसका कोई अर्थ नहीं होता। साले, मुझसे रिश्वत खाते हो, चोर.... हरामी....जेबकतरे! लेकिन, सब चलता है! वह और कर भी क्या सकता है!

शिवमंगल सिपाही कहता है—खैर, आज छोड़ो! आज तो मैं बाहर जा रहा हूँ। फिर कभी सही! कल, या परसों!

वह अपनी जेब से पाँच का एक नोट निकालता है, क्योंकि वह समझता है कि बाहर जाने का मात्र बहाना है और शिवमंगल को नकद पैसे चाहिए—तुमने अब कह ही दिया है, तो यह लो, जब चाहे पी लेना !

शिवमंगल पाँच का नोट ले कर कहता है—एक बोतल के पैसे तो पूरे दो !

वह तीन रुपये और दे देता है। इसी बीच दूसरा सिपाही रामरतन भी वहाँ आ पहुँचता है। वह समझ जाता है कि दोनों योजना बना कर आये हैं कि एक पहले जायेगा और दूसरा ऐन मौके पर पहुँचेगा। खैर, कोई फर्क नहीं पड़ता। हिंदुस्तानी सिपाही मुजरिमों के सहारे ही तो पलते हैं। इस महँगाई के अनुसार उनकी तनखाह है ही कितनी ! वह जेब से पाँच का एक और नोट निकाल कर रामरतन को दे देता है। रामरतन शिवमंगल की ओर देखता है। शिवमंगल कहता है—ठीक है, बेचारे के पास इतने ही होंगे ! एक रुपया लो मेरी तरफ से ! शिवमंगल रामरतन को अपनी जेब से एक रुपया निकाल कर दे देता है। शिवमंगल ने किये-कराये पर पानी फेर दिया, वह समझता है, इसीलिए जेब से तीन रुपये और निकाल कर उनमें बाँट देता है।

रामरतन वापस जाता हुआ कहता है—ईश बाबू, कोई काम हो तो बताना।

वह मुसकुराता हुआ कहता है—जब आप जैसे अच्छे दोस्त मेरे साथ हैं, तो मुझे किसी चीज की चिंता नहीं ! चाय आदि खत्म करने के पश्चात् वह शिवमंगल से कहता है—शिवमंगल यार, जरा उस सिगरेट वाले को बुलाओ, सिगरेट पी लिया जाये।

शिवमंगल वेंडर को जोर से आवाज देता है—दो पनामा लेते आयो ! सिगरेट जलाने के पश्चात् शिवमंगल वहाँ से चला जाता है, लेकिन दो मिनट पश्चात् फिर लौट कर कहता है—ईश बाबू, आज नयी लड़की देखी ?

—हाँ, लेकिन नजदीक से नहीं देख सका। वैसे मुझे पैंतीस-छत्तीस की लगी।

—हाँ, इतनी ही उमर की है वह। फिर शिवमंगल मुसकराता हुआ बोला—करीब एक बजे दुलो भंगी के क्वार्टर में आ जाना।

इतना कह कर वह चला गया। वह समझ गया कि उस लड़की को दुलो भंगी के क्वार्टर तक पहुँचाने में किस तरह शिवमंगल सिपाही उन कुछ लोगों की मदद करेगा। फिर यह महसूस करके कि वह लड़की दुलो भंगी के क्वार्टर में पहुँच गयी है और वह भी उन पाँच-छह लोगों में शामिल है, जो कि बारी-बारी से अंदर जायेंगे, उसे अपने अंदर हलकी-सी गर्मी और कुछ उत्तेजना मालूम पड़ी।

उसने बेंडर से एक और सिगरेट मँगवा लिया था और टी-स्टाल वाले काउंटर के साथ पीठ टिका कर खड़ा हो गया था। इसी समय उसे बारह-पंद्रह लड़के दिखे और उनके पीछे बीस-पच्चीस लड़कियाँ। सबकी उम्र सोलह से इक्कीस-बाईस के बीच लगती थी। लड़कियों ने या तो पैंट पहन रखी थी, या स्कर्ट्स। कुछ लड़कियाँ और कुछ लड़के भी बीटनिक स्टाइल में थे। शायद वे कलकत्ता विश्वविद्यालय के छात्र रहे होंगे। उनके पीछे-पीछे दस-बारह कुली ठेलों पर उनका सामान लादे, ठेले खींच रहे थे। अब सारे प्लेटफार्म की नजरें इस गुट की तरफ थीं। अधिकतर लोग लड़कियों को ही घूर रहे थे।

यह कोई नयी बात नहीं, वह जानता है। आजकल पहाड़ जाने का मौसम है और रोज ही बंबई, दिल्ली, कलकत्ता या दूसरे बड़े शहरों के छात्र-दल यहाँ से गुजरते रहते हैं। कई बार तो ऐसा भी होता है कि छात्रों का कोई गुट रॉक-एन-रोल या शेक आदि डांस शुरू कर देता है। रिकार्ड-प्लेयर उनके साथ होते हैं। फिर लड़के और लड़की का कोई भेद नहीं होता और इस तरफ के पिछड़े हुए लोग, या निम्न तबके के लोग उन छात्रों को नाचता हुआ देख कर ऐसा महसूस करते हैं, जैसे यह नाच देख कर उन्होंने बहुत कुछ प्राप्त कर लिया हो और वे धन्य हैं।

उससे यह सब बरदाश्त नहीं होता। उसकी छाती के न जाने किस

हिस्से में एक नामालूम-सा दर्द उठना शुरू हो जाता है और वह एकदम निराश भाव से सारे वातावरण से अपरिचितता महसूस करने लगता है। उसे कालेज के अपने दिन याद आने लगते हैं और अपनी प्रेमिका टी० अग्रवाल याद आने लगती है, जो उससे इसलिए शादी करने को तैयार न हुई थी कि उसका भविष्य संदिग्ध था और जिसने फिर एक सेंट्रल एक्साईज़ के इंस्पेक्टर से शादी कर ली थी और आजकल शिमला में है।

उसे इन जैसे छात्रों को देख कर वह घटना फिर याद हो आती है कि जब उसके कालेज के छात्र बंबई जाने वाले थे, तो उसे घर से पैसे नहीं मिल सके थे। पैसे तो खैर टी० अग्रवाल ने दे दिये थे, क्योंकि वह डाक्टर की लड़की थी और बहुत अमीर थी, लेकिन उसके पास बंबई जैसे शहर के काबिल कपड़े भी नहीं थे और वह वहां नहीं जा सका था। टी० अग्रवाल चली गयी थी। लडके और लड़कियां उसके सामने से गुजर रहे हैं। उसे महसूस होता है कि वह नपुंसक है और इनमें से किसी के साथ आंख नहीं मिला सकता। उसे यह भी महसूस होता है कि उसे तुरंत एक ऐसी चीज चाहिए, जो उसके अतीत को एकदम समाप्त कर दे। उसे किशन याद आता है, जो चरस के लिए उसका इंतजार कर रहा होगा। वह तेजी से नंबर दो की ओर बढ़ने लगता है।

हालांकि वह वहां देर से जा रहा था, परंतु किशन ने कुछ नहीं कहा और उसके फर्श पर बैठते ही चरस से भरे हुए सिगरेट को आग दिखा दी। वहां किशन के अलावा भी तीन व्यक्ति और थे, जो किशन के साथ ही काम करते थे। अब वे फर्श पर एक दायरे की शक्ल में आलथी-पालथी मारे बैठे थे, परंतु ये सब बिल्कुल पास-पास। हर कोई सिगरेट का एक कश खींचता और फिर उसे अगले व्यक्ति को बढ़ा देता।

दो चक्करों में ही सिगरेट खत्म हो गया। फर्श पर से उठा कर एक और सिगरेट जला लिया गया। इसके अलावा भी चरस से भरा एक और सिगरेट फर्श पर पड़ा था। एक लंबा कश खींचने और सिगरेट को दीपू की ओर बढ़ाने के पश्चात् किशन ने कहा—ईश, मैं देखना चाहता हूं कि

किसी इयर-कंडीशन मकान में गद्देदार कुर्सियों पर बैठ कर चरस पीने में कितना मजा आता है। साथ में एक लौंडिया भी हो, तो कितनी बड़ी बात है! मेरे लिए तो वह स्वर्ग होगा!

दीपू ने सिगरेट आगे बढ़ा दिया था। वह बोला—चरस के साथ लौंडिया का बड़ा जोड़ रहेगा! साली को चबा-चबा कर खा जायेंगे! इतना कहने के साथ ही दीपू हँसने लगा था।

वह चुप रहा। उसे याद आता है, इसी अमीरी ठाट के लिए एक बार उसने दो-चार मित्रों के साथ किसी बड़े आदमी के घर डाका डालने की योजना बनायी थी। वे ऐसा जरूर कर बैठते, अगर उन्हें पिस्तौलें मिल जाती। वह आज भी सोचता है कि यदि उन्हें कुछ पिस्तौलें मिल जायें, तो बड़े वैज्ञानिक ढंग से वह डाके डालने का काम शुरू कर सकता है, क्योंकि वह पढ़ा-लिखा है और जल्दी से काबू में नहीं आ सकता। वह भी किशन की तरह कई बार कल्पना करता है कि एयर-कंडीशंड कमरा होगा, एक-दो खूबसूरत लड़कियाँ होंगी और इसके साथ ही बाकी सब कुछ भी होगा। यह कल्पना कितना सुख देने वाली है!

किशन फिर कह रहा था—साला कोई आठ-दस रुपये का दड़ा ही निकल आये, तो पाँच-छह सौ रुपये मिल जायें! तब गूँगी-मड्डे (वेश्यालय) ही चला जाये! मरने के पहले कुछ तो मजा उठाया जाये! फिर दड़े के नंबरों की बात शुरू हो गयी। उसकी इसमें रुचि नहीं है। दीपू नंबर बत्तीस पर इसरार कर रहा था कि यह नंबर पिंडोरी वाले बाबा ने किसी की मार्फत उसे भेजा है। वह समझता है, यह सब बाबा-वावा हरामी हैं और ठग हैं। किसी एक का नंबर कभी अचानक निकल आता है, तो उसका दो-तीन महीने का खर्च निकल जाता है।

दीपू ने दोसरा सिगरेट भी जला लिया था। उसे चाय पीने की इच्छा हो रही थी। चरस के बाद चाय पीने से नशा कुछ तेज हो जाता है और सब कुछ मीठा-मीठा लगने लगता है। तब बड़ा मजा रहता है।

उसने एक रुपया निकाल कर किशन को दिया कि टी-स्टाल वाले को

पांच गिलास चाय के लिए कह आये। दीपू ने कहा कि वह चाय नहीं पियेगा, क्योंकि चरस के बाद चाय पीने से उसको कै करने जैसी हालत हो जाती है। किशन चार कप चाय के लिए कह आया और सिगरेट का भरपूर कश खींच कर उसे ईश की तरफ बढ़ा दिया।

अब चरस का भरा और कोई सिगरेट शेष नहीं रह गया था, इसलिए उसने दो लंबे कश एक साथ खींच डाले। इसके बाद किशन वगैरह लोग अपने-अपने काम में जुट जायेंगे, इसलिए उसने सोचा कि वह चाय पी कर होटल में चला जायेगा। खाना भी खाना है और जिन-जिन लोगों का दहा या अख्तर आज निकला है, उन्हें भुगतान भी करना है।

किशन वगैरह लोग भी उठ खड़े हुए, तो वह भी स्टाल से एक पनामा का सिगरेट जला कर होटल की तरफ चल पड़ा। प्लेटफार्म से बाहर निकलते-निकलते उसे थानेदार मिल गया। उसने उसे नमस्ते की, तो वह मुसकरा दिया। हर बार ऐसा होता है कि जब वह मुसकराता है, तो उसकी खिचड़ी लगी दाढ़ी और मूंछें कुछ अधिक ऐंठ जाती है। वह इस सिख थानेदार के मुसकराने का मतलब समझता था कि फिलहाल वह प्रसन्न है। तब उसे खयाल आता है कि हिन्दुस्तानी पुलिस के सभी लोग निहायत करप्ट हैं और परिणामस्वरूप इस हिंदुस्तान का जितना भी बेड़ा गर्क हो जाये, कम है। ये अगर थोड़े भी ईमानदार हो जायें, तो हिंदुस्तान क्या-से-क्या हो सकता है, लेकिन हिन्दुस्तान की परवाह किसी को नहीं है।

इसी समय उसे बायीं तरफ से किसी के हंसने की आवाज आयी। पार्क वाले छोटे-से वृक्ष के नीचे बैठे एक साधू-महात्मा जोर-जोर से हंस रहे थे। उनके इर्द-गिर्द पांच-छह लोग बैठे थे। सब साले नम्बर पूछने वाले होंगे, उसने सोचा। उनसे कुछ दूर हट कर चार-पांच लोग ताश या जुआ भी खेल रहे थे। उनमें एक रिक्शा-ड्राइवर बिल्ला भी था, जो माना हुआ जेबकतरा भी था। कई बार मौज में होने पर वह उसे जेब कतरने के कई-कई ढंग बताया करता था। बिल्ला उसकी तरफ देख कर मुसकराया, तो वह भी मुसकरा दिया, साथ में उसने उसे गाली भी दे डाली—मादर...., जुआ

खेल रहे हो ?

—हाँ, मादर....! वे दोनों अब जोर से हंस दिये।

वह और शामलाल लंच के लिए बैठे हुए थे कि होटल के बेरा शम्भू ने आ कर उससे कहा—बाबूजी, आपको कोई बाहर बुला रहा है।

—कौन है ? कहने के साथ ही उठ कर वह बाहर आ गया। हरि था। रेलवे का कुली।

—ईस बाबू, सुना, सरना अभी एक घंटा हुआ, मर गया !

—ओह ! उसे पता था कि वह काफी दिनों से बीमार था। हरि चला गया। उसने शामलाल से कहा—वह है न रेलवे का भंगी सरना, अभी एक घंटा हुआ, वह मर गया। मैं अभी वहाँ जा रहा हूँ।

शामलाल ने कहा—लेकिन खाना तो खा लो।

—नहीं, अब दिल नहीं कर रहा, तुम खाओ, मुझे वहाँ देर लग सकती है। वह होटल के बाहर आ गया।

अंधेरा अब मोटे काले रंग का हो गया था। लकड़ियों पर जहाँ शरीर जल रहा था, काफी रोशनी थी। पन्द्रह-सोलह लोग थे और वे सब-के-सब वहीं बैठे थे। अधिकतर सरना के मित्र भंगी ही थे और एक-दो कुली तथा एक-दो क्लीनर। वह भी उनके बीच में था, चुप, और ऐसे, जैसे कोई उसका अपना मित्र मर गया हो। सरना से उसका कोई विशेष परिचय नहीं था, बस, इतना भर कि वह उसके पास आकर दड़ा का नम्बर लगाया करता था। पिछले ढाई महीने से बीमार रहने के कारण वह उसके पास आ भी न पाता था। बस, सिर्फ तीन-चार महीनों का परिचय। यह बात वहाँ आये सरना के अन्य मित्रों को भी मालूम थी और वे उसे बड़ी इज्जत की निगाहों से देख रहे थे। हाँ, और कोई क्यों नहीं आ गया सरना के मरने पर ? जब वे लोग सरना की अरथी उठा कर चले थे, तो सबसे पहले कंधा भी उसी ने दिया था। यह भी एक विशेष बात थी, जिससे वहाँ उपस्थित शेष लोग उसे अधिक अपना समझ पा रहे थे।

एक 'चटाख' की आवाज हुई, तो उसने जलते शरीर की तरफ देखा। शरीर आधे से अधिक जल चुका था और आग की लपटें अब और भी तेज हो उठी थीं। वह समझ रहा था कि वह सिर्फ इसीलिए सरना के मरने पर नहीं आया कि वह उसके पास आ कर दड़ा का नम्बर लगाया करता था, बल्कि इसके अतिरिक्त भी कुछ है। और वह क्या है, यह वह समझना और सोचना नहीं चाहता था।

किसी की जेब में शायद चरस बच रही थी। उसने उसे सिगरेट में भर कर सिगरेट उसे दे दी थी कि शुरुआत वही करे। उसने सिगरेट जला कर एक कश खींचा और फिर सिगरेट अगले व्यक्ति की ओर बढ़ा दी।

उसने जलती आग की तरफ देखा और फिर अपने पास बैठे इन सब लोगों की तरफ। वह सोच सकता था कि ये जो उसके आसपास हर वक्त उठने-बैठने वाले लोग हैं, ये स्पॉइल्ड जेनेरेशन के लोग हैं और बिना किन्हीं महत्त्वाकांक्षाओं के बड़ी शांति से मरने वाले लोग हैं। उसे इनमें रहते हुए बड़ी प्रसन्नता होती है कि ये लोग जिन्दगी को सच्चे अर्थों में समझने वाले हैं और सीधी-सादी परिस्थितियों में भी आराम से गुजर करने वाले हैं। परन्तु इन सब लोगों को देख कर उसके दिल में हमेशा एक तीव्र पीड़ा-सी उठती है और वह रो-सा देता है। यह सब व्यवस्था के व्यावहारिक पक्षपात के कारण है, वह समझ सकता है। परन्तु उसे इतना भी मालूम है कि ऐसी स्पॉइल्ड जेनेरेशंज आदि काल से चली आ रही हैं और इस चीज को क्या रोका जा सकता है! सिर्फ चीखा जा सकता है, चिल्लाया जा सकता है।

साथ वाले ने सिगरेट उसकी तरफ बढा दिया, तो कश खींचते हुए उसने जलती आग की तरफ फिर देखा। सिगरेट आगे बढाते हुए उसने यह भी सोचा कि वह और नहीं पियेगा, क्योंकि अधिक चरस पीने से उसे फिर चाय की इच्छा होने लगती है और यहां चाय मिल नहीं सकेगी। उसने फिर उस आग की तरफ देखा। अब उसे वह आग बहुत परिचित जान पड़ी। इस वक्त अंधेरा और भी घना हो गया था और सिवा आग के आस-

—कुछ हम लोगों को भी करना चाहिए, नहीं तो बेचारी कैसे जिंदा रह पायेगी !

—हाँ, यह ठीक है। क्यों नहीं, तुम्हारा क्या ख्याल है ?

वह थोड़ा मुसकराना चाहता है। वह जानता है कि जब तक इस चिता की आग ठंडी नही होगी, सहायता के झूठे आश्वासन हर दिशा से प्राप्त होंगे, लेकिन बाद में कुछ नहीं होगा और कोई कुछ नही करेगा। वह खुद भी कुछ नहीं कर पायेगा।

होटल के करीब पहुँचने पर उसे अनजाने ही लगा कि वह श्मशान घाट से भाग कर आया हुआ जीवित शव है। शायद दस बज गये थे, या बजने को थे। वे श्मशान-भूमि से कब लौटे थे, उसे अंदाज नही, परन्तु लौटने पर उन्हें पाँच-दस मिनट के लिए सरना के घर पर भी बैठना पड़ा था। उन सबको अकेले लौट आया देख कर सरना की पत्नी और भी अधिक चीख उठी थी। परन्तु अब कुछ नही हो सकता था। फिर सरना की पत्नी को उसी अवस्था में छोड़ कर वे चुप और शांत वहाँ से खिसक आये थे। उसे कुछ खीज और कुछ थकावट, दोनों एक साथ महसूस हो रही थी। अभी वह होटल से कुछ इधर था कि उसे तिलका मिल गया। तिलका पहले थोड़ा मुसकराया, तब बोला—आज कहाँ रहे, भाई ?

—एक काम आ पड़ा था....जरूरी।

—अरे क्या यार, तुमने तो आज हमारा बेड़ा गर्क कर दिया ! अब उसकी आवाज तेज थी—आज हमारे पास एक बहुत अच्छा नम्बर था बाबा सेखों का बताया हुआ। आज वह साला लगाने से रह गया ! अब देखना, कल को वही निकलेगा।

—तो तुमने लगाया नहीं ? बाजार जा कर किक शाह के पास लगा देते।

—अरे क्या यार, बहुत देर तक तुम्हें ढूँढते रहे ! जब नही मिले, तो भागे-भागे किक शाह के पास गये, लेकिन तब तक टैम हो चुका था, किक शाह ने इनकार कर दिया। वह नाराज लगता था।

पास का कुछ भी दिखायी न दे रहा था। उसने सोचा, मृत्यु के पूर्व सरना की पत्नी यदि किसी जरूरी काम से अपने गाँव न चली गयी होती, तो वे लोग मृत शरीर को श्मशान-घाट जल्दी ले आये होते। जिस व्यक्ति को उसकी पत्नी के पास दौड़ाया गया था वह सवा पाँच के करीब उसके साथ लौटा था। यही शुक्र है कि वे दोनों सूरज डूबने के पहले लौट आये थे। सूरज डूबने के बाद पहुँचे होते, तो और मुसीबत होती। तब मिट्टी को कल तक के लिए रोकना आवश्यक हो जाता और इसका मतलब होता कि उसकी पत्नी सारी रात रोती-चीखती रहती। पत्नी के अपने मृत पति के दर्शन करते ही उन लोगों ने मिट्टी उठा ली थी।

सूरज डूबने-डूबने को था। वह सोच रहा था कि सरना की पत्नी के कारण ही उसका आज का अपना बिजनेस चौपट हो गया था। दड़ा लगाने वालों को जो परेशानी हुई होगी, वह अलग। न तो आज वह पिछले दड़ा का भुगतान कर सका है और न अगले दड़ा के लिए पर्चियाँ काट सका है। पाँच बजे से दड़े का काम जोरों से शुरू हो जाता था। उसने सोचा, जब सब लोग बैठे हैं, तो उसका अकेले का चले आना उचित नहीं है। आज का दड़ा नहीं तो न सही, सिर्फ तीस रुपये की ही बात है न। परन्तु वह महसूस कर रहा था कि आर्थिक दृष्टि से आज का दिन निश्चय ही बहुत मनहूस है। सुबह सिपाही लोग पैसे मार ले गये। सरना के कफन आदि के लिए पैसा नहीं था, तो लगभग बाईस-तेईस रुपये उसके भी खर्च हो गये और आज की जो आमदनी होनी थी, वह भी गयी। लेकिन उसे किसी बात का अफसोस नहीं है। तीसरा सिगरेट जब उसकी ओर बढ़ाया गया, तो इनकार करने की बजाय उसने एक कश फिर खींच लिया। इसी वक्त तारा शिवलाल से कह रहा था—अब इसकी पत्नी का क्या होगा? खर्च कैसे चलेगा? दो छोटे-छोटे बच्चे हैं!

—हाँ, यार, यह बात तो सोचने की है!

—जो पेंशन मिलेगी, वह भी तो बहुत कम होगी।

—कुछ हम लोगों को भी करना चाहिए, नहीं तो बेचारी कैसे जिंदा रह पायेगी !

—हाँ, यह ठीक है। क्यों नहीं, तुम्हारा क्या ख्याल है ?

वह थोड़ा मुसकराना चाहता है। वह जानता है कि जब तक इस चिता की आग ठंडी नहीं होगी, सहायता के झूठे आश्वासन हर दिशा से प्राप्त होंगे, लेकिन बाद में कुछ नहीं होगा और कोई कुछ नहीं करेगा। वह खुद भी कुछ नहीं कर पायेगा।

होटल के करीब पहुँचने पर उसे अनजाने ही लगा कि वह श्मशान घाट से भाग कर आया हुआ जीवित शव है। शायद दस बज गये थे, या बजने को थे। वे श्मशान-भूमि से कब लौटे थे, उसे अंदाज नहीं, परन्तु लौटने पर उन्हें पाँच-दस मिनट के लिए सरना के घर पर भी बैठना पड़ा था। उन सबको अकेले लौट आया देख कर सरना की पत्नी और भी अधिक चीख उठी थी। परन्तु अब कुछ नहीं हो सकता था। फिर सरना की पत्नी को उसी अवस्था में छोड़ कर वे चुप और शांत वहाँ से खिसक आये थे। उसे कुछ खीज और कुछ थकावट, दोनों एक साथ महसूस हो रही थीं। अभी वह होटल से कुछ इधर था कि उसे तिलका मिल गया। तिलका पहले थोड़ा मुसकराया, तब बोला—आज कहाँ रहे, भाई ?

—एक काम आ पड़ा था....जरूरी।

—अरे क्या यार, तुमने तो आज हमारा बेड़ा गर्क कर दिया! अब उसकी आवाज तेज थी—आज हमारे पास एक बहुत अच्छा नम्बर था बाबा सेर्सों का बताया हुआ। आज वह साला लगाने से रह गया! अब देखना, कल को वही निकलेगा।

—तो तुमने लगाया नहीं ? बाजार जा कर किक शाह के पास लगा देते।

—अरे क्या यार, बहुत देर तक तुम्हें ढूंढते रहे! जब नहीं मिले, तो भागे-भागे किक शाह के पास गये, लेकिन तब तक टैम हो चुका था, किक शाह ने इनकार कर दिया। वह नाराज लगता था।

परन्तु वह चला गया। जिधर वह मुड़ा, उसी तरफ सामने जोप फ्लेशलाइट का बड़ा बोर्ड था, जहाँ सुबह वही छत्तीस-सैंतीस की लड़की बैठी हुई थी और जिसे फिर लगभग एक बजे सिपाही शिवमंगल की देख-रेख में रेलवे क्वार्टर्स की तरफ ले जाया गया था। उस लड़की को महसूस करके उसे अपने शरीर में साधारण-सी गर्मी चुभती लगी। उसे ऐसा लगा कि वह लड़की अब भी उसी विज्ञापन-बोर्ड के नीचे बैठी हुई है। शामलाल ने उसे शायद होटल के अन्दर से देख लिया था। बाहर आते ही उसने कहा—बहुत देर लगा दी तुमने! तुम्हारे बहुत से ग्राहक यहाँ बड़ी उतावली में बहुत देर तक चक्कर लगाते रहे। कुछ लोग तो गालियाँ भी दे रहे थे।

—खैर! जरा शम्भू को बुलाओ।

शामलाल ने शम्भू को आवाज दी। उसने पाँच का एक नोट शम्भू को दे कर कहा—जरा भाग कर एक अद्धा तो ले आओ। फिर शामलाल से कहा—तुमने अभी खाना तो नहीं खाया न?

—तुम्हें ही इतनी देर से देख रहा था।

शम्भू अद्धा ले कर कुछ देर से आया। तब तक साढ़े दस बज चुके थे। फिर हालांकि वे उसी वक्त पीने बैठ गये, तो भी खाना खाते-खाते और उठते-उठते सवा ग्यारह बज चुके थे। उसने शामलाल से कहा—आज मैं घर नहीं जाऊँगा। यहीं सो रहूँगा। देर बहुत हो गयी है, इसलिए।

—घर वाले फिक्र नहीं करेंगे?

—करेंगे तो जरूर, लेकिन अब क्या हो सकता है! उसने बाहर देखा, तो तारा खड़ा था। तारा ने उसे संकेत से बाहर बुला लिया। वह समझा कि सरना की पत्नी से संबंधित कोई सूचना तारा लाया है।

तारा ने कहा—ईश बाबू, चलना है। वह मुसकरा रहा था।

—कहाँ? बात क्या है? तुम मुसकरा क्यों रहे हो?

—ईश बाबू, वह लौंडिया जो सुबह यहाँ बैठी थी....इस वक्त हमारे कब्जे में है। चलो, मजा रहेगा।

शायद शराब का असर था। उसने सोचा, वह उत्तेजित तो नहीं हो रहा। परन्तु कहा—और कौन-कौन है?

जिन-जिन लोगों का तारा ने नाम लिया, वे कुल मिला कर छह व्यक्ति थे और सब-के-सब उसके साथ ही अभी कुछ देर पहले श्मशान-भूमि से लौटे थे। अकस्मात उसने तारा की पत्नी को महसूस किया। एक सेकंड के लिए उसे ध्यान आया कि ये लोग उस भिखारिन लौंडिया को नहीं, बल्कि सरना की पत्नी को फांस कर लाये हैं और अब ये सरना की मृत्यु पर उसकी पत्नी के साथ सम्मिलित जश्न मनाने वाले हैं। तारा अब भी मुसकरा रहा था।

उसने महसूस किया कि जो उत्तेजना उसके भीतर कहीं उभरी थी, एकदम से लुप्त हो गयी है। परन्तु वह निर्णय ले चुका था। उसने सोचा कि क्या वह नैतिकतावादी हो रहा है, या नैतिक आवेश जैसा कुछ महसूस कर रहा है, लेकिन कुछ भी हो, वह जायेगा नहीं। इतने लोगों में वह कुछ नहीं कर सकता, वह समझता था। ऊपर से उसने कहा—अच्छा ठीक है, मैं अभी आऊँगा।

—तो नम्बर सत्तावन में आ जाना फिर।

—यह किसका क्वार्टर है?

—गोजरे का। फिर कुछ झिझक के बाद तारा ने कहा—ईश बाबू, दो रुपये उधार दे दो, कल लौटा दूँगा। तारा अब भी मुसकरा रहा था।

—इस वक्त क्या जरूरत है?

—थोड़ी-सी देसी लानी है। कुछ और अधिक मुसकराते हुए फिर बोला—बिना पिये बिल्कुल मजा नहीं आता!

—तुम कुछ पहले आ जाते, तो थोड़ी में ही पिला देता। हमने अभी-अभी बोतल खाली की है। फिर कहा—अभी तो मेरे पास पैसा नहीं है। आज जितने पैसे थे, सब खर्च हो गये। तुम जानते ही हो, आज कोई काम भी नहीं हुआ, ऊपर से भुगतान के सारे पैसे भी खत्म हो गये। उसके पास कुछ पैसे थे जरूर, लेकिन अचानक उसके दिमाग में आया कि नहीं देने

है। दिमाग में आ जाता कि देने ही चाहिए, तो वह दे भी देता। अब तारा मुसकरा नहीं रहा था, उसका मुँह लटक गया था। उसने कहा—तारे, कल से चरस वगैरा मुझसे मिल जाया करेगी। अपने सब दोस्तों से कह देना।

—हाँ-हाँ। तारा ने पैसों के लिए दोबारा नहीं कहा और लौट गया।

वह शामलाल को साथ ले कर सिगरेट के कश लगाता हुआ प्लेटफार्म पर आ गया। कुछ टूरिस्ट कश्मीर या डल्हौजी की तरफ से शायद अभी थोड़ी देर पहले लौटे थे। इस वक्त दिल्ली, या कलकत्ता, या बम्बई के लिए गाड़ी मिलने का कोई प्रश्न ही नहीं था, इसलिए वे लोग प्लेटफार्म पर ही सोने की तैयारी कर रहे थे। वे दोनों उन टूरिस्टों के पास से हो कर आगे की ओर निकले, तो एक लड़की उसे टी० अग्रवाल की तरह लगी। टी० अग्रवाल! वह उस लड़की की तरफ कुछ देर तक गौर से देखता रहा, फिर उसने टी० अग्रवाल का ख्याल झटक दिया और उसके मुँह से निकला—साली....हरामजादी....कमीनी!

उसने सिगरेट के दो-तीन कश खींचे, तो जिस शराब का नशा वह महसूस नहीं कर रहा था, अब उसे वह कुछ-कुछ महसूस हुआ। तब एक-दम से वह कुछ और सोच गया। उसने शामलाल से कहा कि वह सैर करके होटल चला जाये, वह क्वार्टर्स की तरफ जा रहा है और देर बाद लौटेगा। क्वार्टर्स की तरफ जाते हुए उसने एक और सिगरेट जला लिया और उससे उसके पेट की शराब तेजी से फूलने लगी। लगभग सात-आठ मिनट बाद वह नम्बर सत्तावन पर पहुँचा, तो महो उसे दरवाजे पर खड़ा मिला। वह उसे देख कर मुसकराया। कमरे में घुसने पर उसे वही लड़की सामने बैठी नजर आ गयी। अब उसे वह दोपहर से भी अधिक खूबसूरत और कुछ कम उम्र की, यानी छब्बीस-सत्ताईस की लगी। उसने सूंघो महसूस की कि अभी खेल शुरू नहीं हुआ था। महो ने उसके नजदीक आ कर आहिस्ता-से कहा कि बाकी लोग साथ वाले क्वार्टर में हैं, मगर उसको भी कुछ पीनी हो तो वह भी वहीं चला जाये। ●

जन-साधारण

सड़क के दूसरी तरफ आरा है, जिसमें दिन-रात लकड़ी चिरती रहती है। हालांकि बीच में इतनी चौड़ी सड़क है, फिर भी लकड़ी के एकदम महीन कण उस तरफ से उड़-उड़ कर चाय के प्यालों और गिलासों में लगातार गिरते रहते हैं। पहले-पहल गनेशे ने जब यह जगह शुरू की तो उसे खासी परेशानी हुई थी। तब वह दिन भर अपने ही आप में कुढ़ता रहता और मुँह-ही-मुँह में आरे वाले सरदारों को गाली-वाली देता रहता। और जब कभी कोई गाहक भी इस बात की शिकायत कर देता तो वह कुछ ऊँची आवाज में भी गाली-वाली देने लगता। लेकिन फिर धीरे-धीरे उसने हालात से समझौता कर लिया। इस किस्म का समझौता उसकी मजबूरी थी। क्योंकि इसके अलावा कोई और चारा नहीं था। पहले ही कई तरह की उलटी-सीधी जिन्दगी बिताने के बाद उसकी समझ में चाय का यह काम करने की बात आई थी, और अब उसका मन इस काम को छोड़ने का बिलकुल नहीं था। इसलिए वह हर नुक्स को आसानी से टाल देता था। इस जगह पर आरे की तरफ से उड़-उड़ कर आने वाले लकड़ी के हजारों-लाखों महीन कणों की दिक्कत ही केवल नहीं थी, उसे खासी दिक्कत उस लगातार की शूँ की आवाज से भी होती थी जो आरे में लकड़ी चिरने के साथ हर वक्त आसपास बनी रहती थी। यह शूँ की आवाज दिन

में सड़क के ट्रैफिक के कारण तो कुछ कम परन्तु रात को असहनीय हो जाती थी। गनेशे के बीवी-बच्चे नहीं थे, न ही उसका घर था। वह रात को भी इसी जगह पर सोता था। लेकिन धीरे-धीरे इस आवाज को सहन करने की भी उसने आदत डाल ली थी। मगर कई बार अवश्य ही, रात को जब वह हड़बड़ाहट में उठता, तो उसे लगता कारीगर लकड़ी को नहीं बल्कि उसके शरीर को लगातार चीरता चला जा रहा है।

अपने धन्धे में दरअसल उसे इस मुसीबत को बर्दाश्त करने की आदत न पड़ती, लेकिन यह शायद सौभाग्यवश ऐसा था, कि उसके तमाम गाहक एकदम छोटे तबके से सम्बन्धित थे। यानी, इसी सामने वाले आरे के वर्कर, आरे के एक तरफ ट्रक तुलने की मशीन लगी होने और उसी के बगल की खुली जगह में ट्रकों के खड़े रहने से उनके ड्राइवर और क्लीनर, तथा पीछे की टिम्बर-मार्केट के मजदूर। ये तमाम धूल फांकने वाले लोग कभी उससे एतराज़ या शिकायत न करते थे और ये लोग अपने हर चाय के प्याले के साथ लकड़ी के हजारों महीन कणों को निगल जाते थे। हाँ, कभी जब कोई दूसरा राह चलता गाहक उसके पास आकर चाय पीता था तो उसकी तरफ से एतराज जरूर उठता था। पहले-पहल तो वह ऐसी शिकायतों से झल्ला जाया करता था कि उसका धन्धा चौपट हो जायेगा, परन्तु बाद में जब उसकी आमदनी पर कोई फर्क न पड़ा तो उसने ऐसी शिकायतों को गोल करना शुरू कर दिया। और एक बार जब किसी गाहक ने सख्त शब्दों में कहा कि 'चाय के साथ इस लकड़ी के बारूदे को पीने से तो टी० बी० हो जायेगी' और वह अपना चाय का प्याला छोड़ कर चला गया था, तो तब भी गनेशा केवल मुस्करा कर रह गया था। यह बात गनेशा समझता था कि पाँच प्रतिशत के ऐसे गाहकों से उसके धन्धे का कुछ बनता-बिगड़ता नहीं। और बाकी के जो उसके इतने सारे पक्के गाहक थे, उन्होंने तो कभी इस बारे में एक शब्द तक नहीं कहा। वे सब बड़े मजे से यही चाय हँस-हँस कर पी डालते थे।

गनेशे के दिमाग में तो अब एक और बात भी थी, कि इस चाय के

धन्धे के साथ अब रोटी का काम भी शुरू कर दे। लेकिन अड़चन यह थी कि वहाँ और जगह न थी। शुरू में गनेशे का ध्यान जब इस जगह की ओर गया था तब सड़क के इस किनारे पर केवल एक खोखा था, जिसमें एक नाई की दूकान थी। उसने भी इसी दूकान को बगल में अपना खोखा बनवा लिया था। तब वहाँ धन्धे के चल निकलने की कोई गारंटी न थी। और तब यह भी डर रहता था कि म्यूनिसिपल-कमेटी वाले कहीं खोखे को उठवा न दें। मगर उसके धन्धा शुरू करने के बाद देखा-देखी और भी दस-बारह खोखे वहाँ खड़े हो गये थे और उनमें तरह-तरह के काम होने लगे थे। वहाँ पर इतने खोखों की मौजूदगी से अब यह डर तो काफी कम हो गया था कि म्यूनिसिपल-कमेटी वाले उन्हें यहाँ से उठवा देंगे। क्योंकि इतने ज्यादा लोगों को एक साथ जबर्दस्ती बेरोजगार बना देना इतना आसान नहीं होता। और अब यह भी सम्भावना थी कि यदि यहाँ से खोखों को उठवाने की बात उठी भी तो म्यूनिसिपल-कमेटी वाले इतनी-इतनी जगह पर उन्हें पक्की दूकानें बनवा देंगे। क्योंकि रेलवे-रोड के उन पचपन-साठ खोखों में उस रात जब भयानक आग लगी थी, तो उसके पन्द्रह-बीस दिन बाद ही म्यूनिसिपल-कमेटी वालों ने यहाँ पर पक्की दूकानें बनवाने का काम शुरू कर दिया था। बेरोजगार होने जैसी तो अब गनेशे को कोई विशेष चिंता न थी। मगर इस बात से वह काफी परेशानी महसूस करता था कि अब वह अपने धन्धे को और ज्यादा नहीं बढ़ा सकता। वह सोचता था कि उसने शुरू में ही गलती की। शुरू में ही उसे ज्यादा जगह घेर लेनी चाहिये थी और बड़ा खोखा बनवाना चाहिये था। लेकिन तब क्या पता था। तब तो यही चिंता थी कि धन्धा यदि न चला तो वह सात-आठ सौ रुपये के नीचे आ जायेगा।

वैसे तो, सामने वाली लाईन में खाली जगह पर जहाँ ट्रक खड़े रहते थे, उस स्थान के पास ही एक छोटा-सा ढाबा था जहाँ पर ट्रकों के ड्राइवर-क्लीनर तथा दूसरे लोग रोटी खाया करते थे। लेकिन उस ढाबे की रोटी बहुत निकम्मी होती है, वह जानता था। वह भी कई बार वहाँ से खाना

मँगवा कर खा चुका था। दिन के वक्त तो वह अपनी अँगीठी पर ही खाना बना लेता था। लेकिन अपने लिये रात की रोटी तैयार करना उसके लिये बेहद मुश्किल काम था। रात को जब वह देसी का पौआ चढ़ा लेता था तो रोटी जैसा झंझट उससे न हो पाता था। तब वह उसी सामने वाली लाईन के ढाबे वाले को कहलवा भेजता था। दरअसल इसी ढाबे की रोटी खा-खा कर ही उसके दिमाग में यह ख्याल समा गया था कि उसे भी चाय के साथ-साथ रोटी का धन्धा शुरू कर देना चाहिये। क्योंकि वह ढाबे वाला इतनी निकम्मी सब्जियाँ बनाता था कि तबीयत रोटी का कौर उगल देने की होती थी। दाल उसकी एकदम बेहूदा होती थी, सिर्फ पानी। और वह मांस भी बनाता था तो एकदम लद्धड़ किस्म का। और गनेशा यह जानता था कि जब वह बढ़िया सब्जियाँ और शानदार दाल अपने ढाबे में बनायेगा तो वह सामने वाला एक दिन में ही अपना बोरिया-बिस्तर ले भागेगा। और पाये बनाने में तो वह इतना माहिर है कि क्या कहने। बस स्वाद मुँह से चिपक कर रह जायेगा। लेकिन उसकी सोच वहीं खतम हो जाती थी जब वह पाता था कि धन्धे को फैलाने के लिये उसके पास जगह की अत्यधिक कमी है। तब वह बहुत दुःखी हो उठता था।

वह यह भी सोचता था कि वह अपने पास वाले नाई के खोखे को या दूसरी तरफ वाले दर्जी के खोखे को किसी तरह से हथिया ले। उसके पास कुछ पैसा जमा होता तो उसने इन दोनों में से एक खोखे को लेने की बात चलाई भी होती। मगर उसके पास तो एक बहुत ही हल्की रकम के अलावा और कुछ नहीं था। वैसे वह कभी-कभी यह भी सोचता था कि अपने पहले के दिनों को फिर जिंदा कर ले और इस नाई या दर्जी का खोखा बदमाशी से और जबर्दस्ती से छीन ले।

ऐसा नहीं था कि गनेशा इसी बात को लेकर हर समय ही सोचता रहता था। मगर जब भी उसके दिमाग में यह ख्याल आ जाता था तो वह झल्ला पड़ता था और चिन्तित हो जाता था। तब या तो वह अपने यारों-मित्रों से इस बात की चर्चा करके अपना बोझ हलका कर लेता था

श्रौर या वह एकदम से मौन धारण कर लेता था।

एक बात उसकी समझ में श्रौर भी आती थी, कि वह इस जगह को ही छोड़ दे। जैसे, यहाँ से लगभग तीन सौ गज दूर, शहर की तरफ बहुत सारी पक्की दूकाने थीं। वहाँ एक सिनेमा भी था, देसी का ठेका भी था, तथा दूसरी कई तरह की दूकाने थीं श्रौर वहाँ खूब रौनक श्रौर भीड़ रहती थी श्रौर वहाँ गाहक भी खूब आते थे। वहाँ एक-दो ढाबेनुमा दूकाने पहले से थीं, मगर वह जानता था कि वहाँ पर एक-दो ऐसी ही श्रौर दूकानों की गुंजायश भी है। श्रौर फिर वह अपनी बनाई चीजों से गाहकों का दिल बहुत जल्दी जीत सकता है, ऐसा उसे पूरा विश्वास था। लेकिन झंझट वहाँ भी यही था। यानी उन दूकानों में से कोई भी एक दूकान लेने का मतलब था, गाँठ में काफी पैसा होना चाहिए। क्योंकि वहाँ से किसी को उठाने के लिये पगड़ी ही काफी देनी पड़ती। श्रौर किसी ऐसे अतिरिक्त खर्चे के बारे में सोचते ही उसके दिमाग में सनसनाहट होने लगती थी।

उस दिन गनेशे के पास सरनाम बैठा था तब भी यही बात चल निकली थी। सरनाम सामने वाले आरे में कारीगर-मिस्त्री था। इन दिनों वह बीच की शिफ़्ट में चल रहा था। उसकी मशीन का ब्लेड टूट गया था, जिससे उसे कुछ देर के लिये छुटकारा मिल गया था श्रौर वह गनेशे के पास आ बैठा था। गनेशा उसके दोस्तों में से था श्रौर वह अक्सर उसके पास गप्पें हाँकने आ जाया करता था।

इस समय रात के लगभग साढ़े ग्यारह बजे थे। गर्मियों के दिन थे, लेकिन आज कुछ हल्की-हल्की ठंडी हवा चल रही थी। गनेशा अपने खोखे के बाहर दो बेंचों को जोड़कर उस पर लेटा हुआ था। इससे लगभग आध घन्टा पहले वह देसी का पौआ चढ़ा चुका था श्रौर खाने से भी फ़ारिग हो चुका था। वह लेटा हुआ सिगरेट के कश खींच रहा था कि तभी आरे की लगातार धूँ की आवाज एकदम बन्द हो गई थी श्रौर इसके कुछ देर बाद सरनाम उसके पास आकर बैठ गया था।

बातें जब चल निकलीं तो सरनाम ने मुस्कराते हुए गनेशे से कहा,

'तुम ऐसा क्यों नहीं करते....किसी दिन इन सब खोलों को आग लगा दो।'

गनेशे ने कहा, 'इससे क्या होगा यार।'

'होगा क्या, उसके बाद तुम झगड़ा-वगड़ा करके ज्यादा जगह घेर लेना, ढाबे के क़ाबिल खुली जगह बनवा लेना।'

'लेकिन आग लगने से मेरा भी तो बहुत नुकसान हो जायेगा न।'

सरनाम ने फिर मुस्कराते हुए कहा, 'तो मैं तो तुम्हें पहले से ही कह रहा हूँ कि सब्र से काम लो, जितना कमा रहे हो उसी में गुज़ारा करो और खुश रहो, ज्यादा कमा कर कहाँ ले जाओगे।'

अब गनेशे ने कद्रे ऊँची आवाज में कहा, 'तुम मुझसे तो सब्र करने के लिये कह रहे हो, मगर तुम खुद तो हर वक्त अपना रोना रोते रहते हो कि मालिक बड़ा हरामी है, मालिक तुम्हें मार रहा है, तुम्हारी कोई बात पूरी नहीं करता, तुम्हें कोई सुविधा नहीं देता, वह इतनी कम तन्खाह देता है, और अगर उसके आरे को आग लग जाये तो तुम इससे बहुत खुश होगे....।'

सरनाम को ख्याल नहीं था कि बात उसी के मत्थे आ पड़ेगी। इससे वह थोड़ा गम्भीर-सा हो गया। और इसी मुद्रा में उसने कहा, 'हाँ, तो क्या मैं गलत कहता हूँ, तभी तो इस मालिक के बच्चे को पता चलेगा। सालों ने इसी आरे से अपना इतना बड़ा मकान बनवाया है, दोनों भाइयों के पास दो कारें हो गई हैं, साले मजे मारते हैं....जबकि हम वहीं के वहीं हैं, न हमारी तन्खाह बढ़ती है और न किसी शिकायत की तरफ ध्यान दिया जाता है....अब यहाँ काम करने वाले हम दो-तीन मिस्त्री ही तो हैं, हमारी यूनियन भी नहीं बन सकती, हम दोनों-तीनों लोग मिल कर मान लो एक-दो दिन काम बन्द भी कर दें तो इन साले मालिकों को इससे क्या फर्क पड़ेगा, वे हमें फौरन निकाल देंगे और दूसरे आदमी पकड़ लायेंगे, लोगों की कोई कमी थोड़े ही है....तभी तो हम कुछ कर नहीं पाते और मजबूरी में सब्र करना पड़ता है....मगर यह जगह बड़ी होती और हम भी कुछ ज्यादा लोग होते तो हम भी इन मालिकों को दिखाते, अभी न सही

अपनी कुछ शर्तें तो जरूर ही मनवा लेते....।' वह कुछ देर रुक कर उसी संजीदा आवाज में फिर बोला, 'गनेशे, तुम भी अभी उस घटना को नहीं भूले होगे जब लकड़ी के साथ-साथ हुकमे का हाथ कंधे तक कट गया था.... वह तो बेचारा जिंदगी भर के लिये नष्ट हो गया और इन मारे वालों ने उसके लिये क्या किया, उसके घर में कुल सौ रुपये तक भी तो नहीं दिये, बल्कि दूसरे ही दिन राममूर्ति को उसकी जगह रख लिया।....साले ऐसे मालिकों से क्या हमदर्दी। आग लगे चाहे ...। यह तो साली अपनी मजबूरी है कि सब्र करना पड़ता है। आदमी आखिर जाये भी कहाँ....।'

गनेशे ने सिगरेट का टोंटा सड़क के बीचोंबीच फेंक दिया था और अब वह उठ कर बैठ गया था। उसने कहा, 'यही तो बात है सरनाम, अपनी कोशिशों से तो कुछ हो नहीं पाता, कुछ भी करो कोई फर्क नहीं पड़ता। मेरा वह यार है न दर्शन, जो दिन में यहीं बैठा रहता है, यह उसी का कहना है। वह कुछ पढ़ा-लिखा है न। उसका तो यही कहना है कि आज की राजनीति ने आदमी को ऐसे शिकंजे में कस दिया है कि आदमी बिलकुल लुजपुंज होकर रह गया है। वह कुछ भी करे कोई फर्क नहीं पड़ता, इसीलिये वह लगातार घिसट रहा है और मर रहा है। दर्शन का तो यह भी कहना है कि आज की ऐसी हालत में ऊपर उठने के लिए सिर्फ चालाकी और बदमाशी का ही सहारा लेना चाहिये।'

सरनाम मुस्करा दिया, 'इसीलिये तो मैं तुम्हें कह रहा था कि किसी दिन चुपके से इन खोखों को आग लगा दो....।'

गनेशे ने भी मुस्कराते हुये कहा, 'तुम अपने आरे को आग क्यों नहीं लगा देते?'

सरनाम जैसे जबरी मुस्कान के साथ बोला, 'मैं तो यार बाल-बच्चों वाला हूँ, किसी तरह से दो वक्त की सूखी रोटी चल रही है, तुम क्यों इसे भी खत्म करवाने पर तुले हो।'

'बस यही हालत मेरी भी है सरनाम। मान लो मैं इन खोखों को आग लगा भी देता हूँ, मगर उसके बाद कुछ पक्का नहीं है न। मान लो

म्यूनिसिपल-कमेटी वालों की निगाह इस जगह पर पड़ गई और उन लोगों ने यहां फिर से खोखे नहीं बनवाने दिये तब....तब तो जैसा गुजारा अब चल रहा है वह भी फिर कुछ नही मिल पायेगा और तब न इधर के रहेंगे न उधर के।'

दूसरे दिन दर्शन जब वहां पर आया तो गनेशे ने सरनाम की रात वाली सारी बातें उसे सुना दी।

दर्शन गनेशे से काफी छोटा था, अठाईस-तीस साल का। जबकि गनेशे की उम्र बयालीस से कम की न थी। दोनों की दोस्ती आज से लगभग छः-सात साल पहले हुई थी। तब इन दोनों के साथ कृपाल भी था। इन तीनों का एक छोटा-सा ग्रुप था, और यह लोग शहर में और शहर के आस-पास छोटी-छोटी चोरियां किया करते थे। यह तीनों ही अपने इस काम में होशयार और बहादुर थे, और इनकी आपस में निभती भी खूब थी। इसलिये जितने अरसे भी इनका काम चला, खूब ठीक-ठाक ढंग से चला और यह कभी पकड़े नही जा सके। लेकिन इन दोनों को अचानक बीच में ही छोड़ कर कृपाल एक दिन किसी दूसरे आदमी के साथ किसी दूसरे शहर में चला गया। कृपाल के यूं चले जाने से इन्हें कुछ धक्का-सा लगा, और यह दोनो फिर कभी चोरियां करने जैसा काम जारी न रख सके। तब एक दिन ऐसे ही देसी की बोतल के दरम्यान दर्शन को यह बात सूझी कि अपने लोगों का कोई धंधा-वंधा भी होना चाहिये। और नतीजे के तौर पर गनेशे वाला यही चाय का खोखा खड़ा हो पाया था। यह खोखा और यह सारा धंधा गनेशे का ही था, हालांकि शुरू में आधा पैसा दर्शन ने भी इसमें लगा दिया था। मगर दर्शन न ही तो कभी अपना हिस्सा लेता था, और न ही कभी किसी से इस धंधे को अपना धंधा बताता था। बस वह जब चाहे यहां पर आकर बादशाहों की तरह बैठ जाता था। एक तरह से यह उसका 'अड्डा' ही था। दर-असल, इस धंधे के शुरू होने के कुछ ही दिनों बाद दर्शन इसमें रुचि लेना छोड़ चुका था। उसने इस धंधे के शुरू किये जाने की बात तो कर

दी थी, मगर वह इस ख्याल के साथ टिक नही पाया था। वह थोडी खुली तबीयत का आदमी था और एक जगह बँध जाने में उसे दिक्कत होती थी। उसने तब शहर में कुछ दूसरी तरह के गंदे-मंदे काम आज़ादाना तौर पर शुरू कर दिये थे, जिनसे उसे रोज की पन्द्रह-बीस रुपये की आमदनी हो जाती थी। और इतने पैसे उसको अपना परिवार चलाने के लिये एकदम काफ़ी होते थे। मगर गनेशे से उसका याराना अभी भी कायम था। और उसके खोखे पर वह रोजाना नियमित-रूप से आता था। दरअसल यह विचार भी उसी ने गनेशे के दिमाग में भरा था कि अब उसे चाय के काम के साथ-साथ रोटी का काम भी शुरू कर देना चाहिये।

गनेशे ने सरनाम की रात वाली बातें अभी खत्म की ही थीं कि उसी वक्त दर्शन का कोई मिलने वाला वहाँ आ गया था। तब दर्शन अपने उस नये साथी से बातों में मशगूल हो गया था, और गनेशा वहाँ से हटकर अँगीठी से पास आ खड़ा हुआ था।

गनेशा इस नये व्यक्ति को शक्ल से पहचानता था। इसका नाम रघुपति था, और यह आदमी जोधामल टिम्बर वालों के मैदान वाले डिपो का इंचार्ज था। गनेशा हैरान था कि इसका कोई भी सम्बन्ध दर्शन से कैसे हो सकता है। खैर, उसे क्या, उसने सोचा। उसने चाय के तीन गिलास बनाये, और एक वहीं अपने लिये छोड़कर दो गिलासों को दर्शन के पास ले गया। दर्शन उस समय सिगरेट सुलगा रहा था। उसने गनेशे को भी एक सिगरेट दी और उसे सुलगवा दिया। गनेशा सिगरेट का कश खींचता हुआ फिर अँगीठी के पास आ खड़ा हुआ। इसी वक्त दो गाहक वहाँ आ गये जिनके लिये वह चाय बनाने लगा।

गर्मियों के दिन थे, इसलिये उसके गिलास की चाय अभी तक गर्म थी। उसने सिगरेट का टोंटा जलतो अँगीठी में फेंक दिया और चाय का घूंट भरने से पहले गिलास में फूँकें मारने लगा। चाय पीते वक्त यह उसकी विशेष आदत थी। इसी वक्त उसने दर्शन की तरफ़ देखा, रघुपति दर्शन को पाँच-छः दस-दस के नोट दे रहा था। दर्शन नोट थामते हुये कह रहा

था, 'शाम चार-पाँच बजे तक मैं आ जाऊँगा।' गनेशा सोचने लगा, यह रुपये पता नहीं किस सिलसिले में दर्शन को दिये गये हैं। खैर, उसे क्या, उसने सोचा। दर्शन जाने। वह गिलास में फूंकें मारता हुआ चाय के घूंट भरने लगा।

कुछ देर बाद रघुपति जब खोखे से बाहर चला गया तो गनेशा दर्शन के पास आ बैठा। उसकी चाय अभी भी खत्म नहीं हुई थी। बेंच पर दर्शन की सिगरेट की डिब्बी पड़ी थी। उसने उसमें से सिगरेट निकालकर जला ली। तब कहा, 'वह बात तो यार बीच में ही रह गई, जरा उस पर तो सोचो।'

दर्शन हँसने लगा। और कहा, 'तुम तो गनेशे बेवकूफ हो। सरनाम ने तो वह बात मजाक में कही होगी, और तुम लगता है उसी पर लगातार सोच रहे हो।'

गनेशा जैसे संजीदा था, बोला, 'मजाक भी हो तो क्या, ऐसा क्या हो नहीं सकता। ऐसा कुछ अगर हो जाये तो उसमें हमारा फायदा ही फायदा है।'

अब दर्शन ने भी एक सिगरेट सुलगा ली, और फिर बोला, 'छोड़ो यार उस बात को, उसमें कुछ नहीं रखा, वह सब मामूली बात है....।'

'मामूली' शब्द से गनेशा जैसे थोड़ा-सा चौंका। उसने चाय का आखिरी घूंट भरा और खाली गिलास को बेंच पर रखते हुये दर्शन के चेहरे की तरफ देखने लगा।

दर्शन ने कहा, 'अब दरअसल इस धंधे में कुछ नहीं रखा। लोगों को बना-बनाकर चाय पिलाते जाओ या रोटी खिलाते जाओ, यह भी कोई धंधा है साला।'

गनेशा बड़ी हैरानी से बोला, 'क्या बात कर रहे हो यार! तुम्ही ने तो यह धंधा खुलवाया था, और यह भी तुम्हारी ही सलाह थी कि अब इसमें रोटी का काम भी शुरू कर देना चाहिये।'

'वह तो सब ठीक है, वह सब अपनी जगह है। मगर यह भी तो

सोचो इस जूठे बर्तन मांजने वाले काम में तुम्हें क्या मिल जाता है या आगे मिल जायेगा। इसमें कुछ भी बनने से रहा....।'

फिर वह कुछ धीमे स्वर में बोला, 'मैं दरअसल आज तुमसे एक बहुत जरूरी बात करने आया था। यह बात ऐसी है कि तुम समझो हमारे वारे-न्यारे हो जायेंगे।'

इससे गनेशे का चेहरा भी कुछ चमकने लगा, और उसने एक साथ सिगरेट के दो लम्बे कश खींच डाले।

दर्शन ने कहा, 'एक पार्टी से कल मुलाकात हुई थी। उनका काम है। और बहुत बड़ा काम है। तुम्हें अब यह धंधा चलाने की भी कोई जरूरत नहीं। उनसे बात हो गई है। और वे हर बार के हमें दो-दो हजार रुपये दिया करेंगे।

जो दो गाहक बैठे चाय पी रहे थे, उनमें से एक ने कहा, 'गनेशे, यह पैसे पड़े हैं,' और वे उठकर खोखे से बाहर चले गये।

इतनी बड़ी रकम के नाम से गनेशे की आंखों में खुशी तैर गई थी। मगर उसने पूछा, 'यह काम कैसा है ? हमें क्या करना होगा ?'

दर्शन ने कहा, 'काम ज्यादा मुश्किल नहीं है। दरअसल वह पार्टी स्मगलिंग का धंधा करती है। हमें सिर्फ पाकिस्तानी बार्डर तक जाना पड़ा करेगा। इस काम के लिये हमारे साथ एक जीप भी रहेगी। बस वहां से माल लेना है और लेकर चले आना है। बार्डर पर भी खास खतरा नहीं होगा, क्योंकि बार्डर-पोस्ट के इंचार्ज को यह लोग मिलाये रहते हैं....।'

इस चाय के धंधे से पहले गनेशे ने छोटी-छोटी चोरियों का काम जरूर किया था और उस काम में उसे इतना डर भी न लगता था। डर लगता भी था तो वह उन छोटे-छोटे डरों का अभ्यस्त ही था। मगर दर्शन की जबानी अब इतने बड़े काम, और स्मगलिंग, बार्डर जैसे शब्दों को सुनकर वह अपने अन्दर ही अन्दर बौखला गया।

दर्शन अभी कह ही रहा था....'और हर बार के इतने से काम के हमें दो-दो हजार रुपये मिला करेंगे....।'

'मगर दर्शन, यह काम इतना आसान नहीं है जितना तुम इसे समझ बैठे हो। इसमें तो जान जाने का भी खतरा है....और अगर कहीं पुलिस के हाथों पड़ गये तो ऐसे कामों में लम्बी सज़ाएँ होती हैं....यह काम तो बड़ा ही मुश्किल है....।'

गनेशा जैसे अपने अन्दर ही अन्दर डूबने लगा था। उसे अब सरनाम की बात भी याद आ रही थी कि सब्र से काम लेना चाहिए। यही ठीक रहता है। वह अब सोचने लगा था कि उसकी कोई इतनी बड़ी इच्छा भी तो नहीं है कि जिसके पास बहुत पैसा हो जायेगा और वह अमीर आदमी हो जायेगा। दो वक्त की रोटी तो उसे मजे से मिल ही रही है, और रात को पीने को देसी का पौआ भी मिल जाता है। इसके अलावा उसे और क्या चाहिये। यह ठीक है कि वह कुछ तरक्की जरूर करना चाहता है, मगर इसके लिये वह किसी बड़े खतरे में नहीं पड़ना चाहेगा। अब तो इसी चाय के धंधे के साथ जो तरक्की हो जाये सो हो जाये। वह दूसरा कोई ऐसा-वैसा काम नहीं कर सकता।

उसने दर्शन की ओर देखते हुये कहा, 'मेरा तो दिल बिल्कुल नहीं मान रहा। यह काम मुझसे नहीं हो सकेगा...। इसमें तो मुसीबत ही मुसीबत है...।'

दर्शन हँसने लगा, 'लगता है तुम पहले ही बहुत डर गये। यार, मैं भी समझता हूँ यह काम इतना आसान नहीं और इसमें कुछ खतरा भी है, मगर उतना खतरा नहीं है जितने पैसे इसके बदले में मिलेंगे, जरा यह भी तो सोचो। एक बार काम करने के हमें दो-दो हजार रुपये मिलेंगे....और फिर तुम इतना डर किस लिए रहे हो, मरना तो एक ही दिन है न। मगर लगता है जब से तुमने यह चाय का धंधा शुरू किया है तुम तो एकदम से सुस्त हो गये हो....'

'यह बात नहीं दर्शन। कोई दूसरा छोटा-मोटा काम होता जैसा हम पहले करते रहे हैं तो मैं फौरन तैयार हो जाता। मगर यह काम हमारे लिये बहुत बड़ा है। मुझसे तो यह हो ही नहीं पायेगा। मेरा दिल बिल-

कुल नही मान रहा। और मैं तो तुमसे भी कहूँगा कि ज्यादा पैसों का लालच छोड़ दो और अपने दिमाग़ से यह बात निकाल दो....'

'मगर गनेशे, अब कुछ नहीं हो सकता। मैंने यह काम करने का फ़ैसला कर लिया है। मैंने उस पार्टी वालों से हाँ कर दी है और तुम्हारी तरफ़ से भी हाँ कर दी है....'

गनेशे की आँखें एक क्षण के लिए क्रोध से उबल ही पड़ी। उसने घूर कर दर्शन को देखा। मगर दूसरे ही क्षण वह ढीला-सा पड़ गया और गर्दन घुमा कर बाहर सड़क की तरफ़ देखने लगा। लेकिन एक-दो मिनट बाद ही वह फिर क्रोध से भर उठा और दर्शन की ओर मुड़कर ज़ोरदार आवाज़ में कहने लगा, 'तुमने मेरी तरफ़ से हाँ क्यों कर दी....मैं यह काम नही कर सकता....मैं यह काम नही करूँगा....।'

दर्शन ने मुस्कराते हुये कहा, 'तुम गुस्से में क्यों बोल रहे हो।' उसने बेंच पर से सिगरेट की डिब्बी उठाई और उठ खड़ा हुआ, 'तुम ज़रा ठंडे दिल से सोचना। मैं अब जा रहा हूँ। मुझे एक जगह पहुँचना है।'

दर्शन खोखे से बाहर आ गया और शहर की तरफ़ वाले रास्ते पर चल दिया।

वह वहीं बेंच पर गुमसुम बैठा रहा। उसका सर भन्ना रहा था। वह समझ नही पा रहा था कि उसे अब क्या करना चाहिए। उसका दिमाग़ एकदम भारी हो गया था और वह कुछ सोच न पा रहा था। दर्शन तो वहाँ से चला गया था, और उसके लिये अब यह उलझन पैदा हो गई थी कि वह अब क्या करेगा। क्या वह अपने इस धंधे को छोड़ने को तैयार हो जायेगा, और क्या वह दर्शन के साथ मिलकर उस पार्टी का स्मगलिंग का काम शुरू कर देगा? उसके रोटी के काम शुरू करने वाली बात का क्या होगा? यह सब चीज़ें उसके दिमाग़ में एक-साथ घूम रही थीं और उसका सर दर्द करने लगा था। फिर वह यह भी समझ रहा था कि दर्शन जल्दी ही दोबारा यहाँ आयेगा, तब वह उसे क्या जवाब देगा। क्या वह उसे इनकार कर सकेगा? इनकार कर देगा तो दर्शन क्या सोचेगा? लेकिन वह

अपना यह धंधा भी छोड़ना नहीं चाहता। इस काम से भी तो तरक्की का जा सकती है। जैसे अगर वह साथ में रोटी का काम शुरू कर दे। मगर जगह कहाँ है? उसके पास रोटी का काम शुरू करने के लिये जगह भी तो नहीं है....

जब इन्हीं सारी बातों से उसका सर और ज्यादा भन्नाने लगा तो उसने गिलासों के पास रखी पैसों वाली संदूकची में से बीड़ी का बंडल निकाला और उसमें से एक बीड़ी खींच कर उसे सुलगा लिया। इसी वक्त उसके खोखे की लकड़ी की दीवार को पीटते हुये बगल के छज्जू नाई ने जोर से कहा, 'गनेशी, बाबूजी के लिए चाय बनाना, फस्सक्लास।' इसके तुरन्त ही बाद छज्जू नाई फिर बोला, 'चीनी जरा ठीक डालना।'

गनेशी ने बीड़ी पर कश लगाते हुये चाय के बर्तन को अंगीठी पर रख दिया और केतली में से उसमें पानी उंडेलने लगा।

सड़क के पार से आवाज आई, 'ओ गनेशी।'

गनेशी ने उधर देखा। ट्रक तौलने वाली मशीन के बगल में तीन-चार ड्राइवर लोग बैठे थे, जिनमें से एक ने अपने हाथ की चार उँगलियाँ सीधी तान रखी थी।

गनेशी ने जोरदार आवाज में कहा, 'अभी लाता हूँ।' उसने चाय वाले बर्तन में चार चाय का पानी और उंडेल दिया।

चाय जब बन गई तो एक गिलास उसने नाई के खोखे में पकड़ा दिया और चार गिलास सड़क के पार उन ड्राइवरों को दे आया। चाय वाले बर्तन में कुछ चाय अभी बची हुई थी। इसे उसने अपने लिये गिलास में भर लिया। चाय वाले बर्तन में अक्सर थोड़ी-बहुत चाय बच जाया करती थी, आधा गिलास या चौथाई गिलास, और इसे फेंकने की बजाये हर बार वह खुद पी लिया करता था। इस तरह से दिन में वह लगभग चालीस-पचास बार चाय पीता था।

अपने गिलास में फूँकें मारते हुए वह बेंच पर आ बैठा। आज गर्मी बहुत ज्यादा थी। गर्मियों के दिन तो थे ही। मगर आज सड़क जैसे जल

रही थी। सड़क पर से जब कोई ट्रक, मोटर या कार गुजरती तो गर्म हवा के साथ धूल भी उड़ती। इस धूल का कुछ हिस्सा उसके खोखे में भी चला जाता। सामने वाले आरे के कारण पहले ही लकड़ी के हजारों महीन-महीन कण उसके खोखे में भरे रहते थे। गर्मियों में इन महीन कणों से एक यह भी परेशानी थी कि वे पसीने के साथ चेहरे-हाथों पर चिपक जाते थे। और अब यह सड़क की गर्म हवा और धूल। इससे और भी ज्यादा परेशानी थी। वह इसी परेशानी के कारण कई बार सोच चुका था कि अगर उसके पास पक्की दूकान होती तो वह उसमें छत वाला पंखा जरूर लगवाता।

सड़क के उस तरफ से आरे का कारीगर बिशन लाल आ रहा था। वह शायद उसी के पास आ रहा था। बिशन लाल ने अपने मुंह और नाक पर बारीक कपड़ा लपेट रखा था। जब वह पास आया तो गनेशे ने देखा वह कपड़ा लकड़ी के बारूदे से भरा हुआ था! बिशन लाल के सर पर बँधा कपड़ा और दूसरे कपड़े कमीज-पाजामा आदि भी बारूदे से भरे थे। बिशन लाल ने खोखे से थोड़ा बाहर ही अपने कपड़े झाड़े, मुंह-नाक पर से कपड़ा खोला और उसे भी झाड़ा, फिर वह खोखे के अन्दर आ कर गनेशे के पास बेंच पर बैठ गया।

गनेशे ने कहा, 'कैसे हो बिशनू, चाय बनाऊं क्या?'

बिशन लाल बोला, 'अरे छोड़ो यार चाय, गर्मी से तो पहले ही जान निकल रही है। साला गर्मी के दिनों में आरे में काम करना भी एक मुसीबत है, एक मिनट भी वहाँ खड़े रहना मुश्किल हो जाता है.....'

फिर दूसरे क्षण बोला, 'अच्छा, अगर तुम्हारी मर्जी है तो बना दो एक गिलास, मगर पहले थोड़ा पानी जरूर पिला दो यार....तुम्हारे खोखे में भी तो बेहद गर्मी है....'

गनेशा उसे पानी पिला कर उसके लिये चाय बनाने लगा।

बिशन लाल फिर बोला, 'गनेशे, तुमने सुना कि नहीं, आज सुबह रामकृष्ण-प्रेमकृष्ण वालों के डिपो में एक आदमी मर गया।'

५

'न, मैंने तो नहीं सुना,' गनेशे ने कहा, 'कैसे हुआ, कौन आदमी था वह।'

'अभी आरे में एक ठेला आया था, उन्ही लोगों से पता चला। वह आदमी उसी डिपो में स्लीपर ढोने का काम करता था। वह एक ढेर पर खड़ा हुआ था कि वहाँ से फिसल गया, और उसके साथ ही पाँच-सात स्लीपर फिसलते हुये उसके ऊपर गिर गये। वह दूसरी साँस भी न ले पाया बेचारा। सुना है उसके चार-पाँच बच्चे हैं....'

गनेशे का चेहरा जैसे कमज़ोर पड़ गया। वह अफसोस करने लगा। फिर दो-तीन क्षण बाद बोला, 'डिपो वालों को उसके घर वालों की मदद करनी चाहिए....'

'वे क्या मदद देंगे। ज्यादा-से-ज्यादा तीन-चार सौ रुपये उन्हें दे देंगे। मगर उससे क्या होता है। बच्चों की पूरी जिन्दगी आगे पड़ी है....'

'हाँ, यह तो है। यह तो वाकई बहुत बुरा हुआ!' इतना कह कर गनेशे ने चाय गिलास में उँडेली और गिलास बिशन लाल को पकड़ा दिया।

बाहर तेज धूप और धूल थी। उस ओर देखते हुये गनेशे ने बिशन लाल से कहा, 'बिशने, तू चाय पी, मैं जरा सामने से खाली गिलास ले आऊँ।'

ड्राइवर लोग चाय पी चुके थे। उसने जमीन पर रखे खाली गिलास उठा लिये। एक ड्राइवर ने उसके हाथ में दो का नोट पकड़ा दिया। उसने अपने खोखे की ओर मुड़ते हुये कहा, 'मैं बाकी पैसे लेकर अभी आता हूँ।'

दो-तीन मिनट बाद जब वह लौट कर वहाँ आया तो उन चारों ड्राइवरों के पास खड़ा एक सिक्ख ड्राइवर पास में खड़े एक रिक्शा की ओर इशारा करके कह रहा था, 'सूअर का पुत्तर, रेलवे रोड से यहाँ तक का सवा रुपया माँग रहा है, हरामी समझता है जो माँगेगा मिल जायेगा, हम क्या उल्लू हैं, हम कुछ नहीं जानते....'

रिक्शा वाला कह रहा था, '....यह इतना भारी टायर भी तो आप

लाद कर लाये हैं। मैंने तो आपसे पहले ही कह दिया था कि यहाँ तक का सवा रुपये से कम नहीं लूँगा....'

वह सिक्ख ड्राइवर कड़क कर बोला, 'और मैंने कहा था कि बारह आने से ज्यादा एक पैसा न दूँगा।' फिर एक क्षण बाद बोला, 'अब बारह आने लेते हो तो लो नहीं तो भागो यहाँ से....'

'भागो कैसे, मेहनत की है, कोई हराम के पैसे तो नहीं माँग रहा, मैं सवा रुपये से कम लिये बिना नहीं जाऊँगा....'

सिक्ख ड्राइवर फिर कड़क कर बोला, 'अब तू झगड़ा कर रहा है.... तेरी बदमाशी तो मैं एक मिनट में निकाल दूँगा....ऐसी जोरदार झापड़ दूँगा कि जिन्दगी भर याद रखेगा।'

रिक्शा वाला बोला, 'मार कर तो देखो....'

तभी उन बैठे हुये चार ड्राइवरों में से एक गुस्से में उफनता उठा और 'हरामखोर, बदमाशी दिखाता है, और फिर आगे से बकवास करता है' कहते हुये तेजी से उस रिक्शा वाले की ओर लपका और उसने उस रिक्शा वाले के चेहरे पर एक ऐसा जोरदार झापड़ मारा कि वह लड़खड़ाता हुआ दूर जलती सड़क पर जा गिरा।

गनेशा एकदम से तिलमिला उठा। लेकिन तुरन्त ही फिर वह सँभल भी गया। वह कुछ कहना चाहता था, मगर उसने अपने को रोक लिया था। उसने पैसे वापस किये और अपने खोखे की तरफ चल पड़ा। सड़क पार करते हुये उसने देखा, वह रिक्शा वाला सड़क पर से उठ गया था और अपनी एक टाँग को सहला रहा था, शायद उसका एक घुटना बुरी तरह से छिल गया था।

खोखे की अन्दर वाली बेंच पर बैठा बिशन लाल चाय की चुस्कियाँ ले रहा था। गनेशा जाकर अँगीठी के पास खड़ा हो गया।

बिशन लाल बोला, 'उस रिक्शा वाले को भला मारने की क्या जरूरत थी....वह तो पहले ही बेचारा गरीब-दुखी आदमी है....तुमने भी....'

गनेशा मुस्कराते हुए बोला, 'छोड़ यार बिशने, कोई दूसरी बात कर....

जगह-जगह तो यही हाल है...कौन किसी को बचाने आता है और कौन किसी की परवाह करता है....वह रिक्शा वाला गरीब-दुःखी आदमी है तो तुम कौन से धन्ना सेठ के पुत्तर हो....या मैं....तुम्हारा भारे वाला मालिक भी तो तुम्हारे डंडा किये रहता है, और कौन माई का लाल तुम्हारे साथ हमदर्दी दिखाने आता है....विशने, बस....', वह कुछ और कहना चाहता था, लेकिन इतना ही कह सका, '....लो बीड़ी पिओ....।' और वह संदूकची में से बीड़ी का बंडल निकालने लगा।

हातो

सर्दियों की पहली बारिश शुरू होते ही सारा कश्मीर खाली होना शुरू हो जाता है। बड़े-बड़े व्यापारी, गजटेड आफिसर और अन्य अमीर लोग सीधे दिल्ली तक पहुँचने लगते हैं और सैर-सपाटे की खातिर इससे भी आगे बम्बई-कलकत्ता की तरफ निकल जाते हैं। काश्मीर एसेम्बली के दोनों ग्रुप अपने खेमे जम्मू में तानते हैं और वहीं पर एक-दूसरे पर फब्तियाँ कसते हैं। और कश्मीरी मजदूर! वे पहले पठानकोट पहुँचते हैं, कश्मीरी होटलों में अपनी कुछ जमा रकम उड़ाते हैं और फिर धीरे-धीरे सारे पंजाब में फैल जाते हैं। कुछ एक दिल्ली तक भी आते हैं।

हर साल ऐसा ही होता है।

इन कश्मीरी मजदूरों में कइयों के साथ उनकी बीवियाँ और जवान लड़कियाँ होती हैं। इनके छोटे-छोटे बच्चे सारे शहर में भीख माँगते नजर आते हैं, स्टेशन पर, बस-स्टेशन पर, बस-स्टेण्ड पर, रेस्तराओं के बाहर, बाजारों में। और ये खुद मजदूरी करते हैं, मंडियों में, लकड़ी की टालों में, कोयला डिपुओं में। कुछ सिर्फ ठेले चलाते या कुली का काम करते हैं।

हर साल ऐसा ही होता है।

सर्दियों के शुरू होते ही पंजाबी मजदूर यह कहते सुने जाते हैं, "अब हातो आ जायेंगे, अब मरे।"

"बस थोड़ी देर है, हातो आने ही वाले हैं।" शहर के व्यापारी लोग भी वार-बार यही कहते हैं।

हातो! यह इन्हीं कश्मीरी मजदूरों का पंजाबीकरण है। कोई इन्हें मजदूर नहीं कहता। बल्कि सिर्फ हातो! यह नाम क्यों और कैसे पड़ा इसके इतिहास के बारे में हमारी जानकारी बिलकुल नहीं है।

"खुश—आमदीद।"

पंजाब के व्यापारी और स्टाक-होल्डर इन कश्मीरी मजदूरों के आने पर यही सब कहते हैं।

"ओ तेरी बहन........"

पंजाबी मजदूर इन कश्मीरी मजदूरों के आने पर इनको और इनकी माओं-बहनों को हजारों क्या लाखों गालियां दे डालते हैं। वे इन कश्मीरी मजदूरों से वैर रखते हैं और इनसे भिड़ जाने को हर समय तैयार रहते हैं। लेकिन ये कश्मीरी मजदूर, चाहे अपनी लड़कियों, बीवियों और अपने बच्चों से भीख मँगवाते हैं, किसी से भी तल्खी या बदजबानी से कभी पेश नहीं आते, कभी किसी से झगड़ते नहीं, कभी किसी को गाली नहीं देते, कभी चोरी या ऐसी कोई गन्दी हरकत नहीं करते।

बात यह है, कश्मीरी मजदूरों के इधर आते ही मजदूरी के रेट बहुत गिर जाते हैं। पंजाबी मजदूर तीन रुपये से कम कभी नहीं कबूलते, परन्तु ये हातो सवा या डेढ़ रुपये दैनिक पर ही हँसी-खुशी काम करने को तैयार हो जाते हैं। पंजाब के व्यापारी और बड़े-बड़े आढ़ती इन हातोओं को हाथों-हाथ लेते हैं क्योंकि ये हातो पंजाबी मजदूरों के बजाय काम भी ज्यादा करते हैं। उनकी तरह ये सुस्ती नहीं दिखाते।

इन हातोओं के आने से इधर के लोगों को केवल एक नुकसान होता है, यह कि बहुत से स्थानीय मजदूर बेकार हो जाते हैं। इन्हें फिर या तो रिक्शा चलाना पड़ता है या फिर चोरियां करनी पड़ती हैं।

हर साल ऐसा ही होता है। स्थानीय व्यापारियों और आढ़तियों को खुश करके और यहाँ के मजदूरों की गालियां सह-सहकर ये कश्मीरी मजदूर

सर्दियों के खत्म होते ही वापस चले जाते हैं, कश्मीर।

इस साल भी ठीक ऐसा ही हुआ।

कश्मीरी मजदूरों के टोले के टोले, बंजारों की तरह या शरणार्थियों की तरह, स्टेशन पर, बस-स्टेण्ड पर, कश्मीरी होटलों में और जगह-जगह पर लदे पड़े हैं। इनमें से बहुत से दूसरे शहरों में चले जायेंगे! कुछ यहीं रह जायेंगे।

ममदू भी इस बार फिर यहाँ आया है।

पाठक नोट करें कि इस कहानी का कहने वाला ममदू से पहले का परिचित है। ममदू पहले भी इस शहर में आया है और इस कहानी का कहने वाला लोकल है। ममदू के साथ उसका एक छोटा लडका भी है। ममदू की बीबी तीन साल पहले कश्मीर में मर गई थी, बीमारी से। ममदू के साथ उसके टोले के पन्द्रह-बीस आदमी और भी हैं, तीन-चार बच्चे भी, औरत कोई नहीं। ममदू के टोले में इस बार कुछ नये चेहरे भी हैं। कुछ परिचित चेहरे नजर भी नहीं आ रहे। शायद वे किसी दूसरे टोले के साथ मिल गये होंगे।

ममदू का असल नाम मोहम्मद लतीफ है, लेकिन सभी उसे ममदू कहते हैं और उसे इस परिवर्तन पर कोई ऐतराज नहीं।

इस टोले के आते ही पहले की तरह अन्दरून-बाजार में एक छोटी-सी दुकान किराये पर ले ली गई है। उसमें से मकड़ी के जालों और अन्य गन्दी और सीलन की बू को धो डाला गया है। अपनी-अपनी बोरियों में भरा अपना निजी सामान एक कोने में ढेर की शकल में लगा दिया गया है। अब चूल्हा इकट्ठा ही जलेगा।—

टाँगा-एजेन्सी में शहर के बड़े-बड़े आढ़तियों की दुकानें हैं।

टाँगा एजेन्सी, जब इस शहर की आबादी सात-आठ हजार के लगभग थी कुल, तब यह टाँगा-स्टेण्ड ही था। पार्टीशन के बाद और अब इस शहर की आबादी सवा लाख तक बढ़ गई है, इसलिए इस टाँगा स्टेण्ड को आढ़तियों ने घेर लिया है, बहुत-सी नयी दुकानें बनवा ली हैं।

भी वही है, टाँगा-एजेन्सी।

टाँगा-एजेन्सी में आलुओं के एक थोक-व्यापारी की दूकान का नाम है, बालकराम-शोरीलाल। कश्मीर से आकर ममदू इसी आढ़त की दूकान पर काम किया करता था, तीन-चार साल से लगातार। कश्मीर से आता, सीधा इसी दूकान पर जाता। काम मिल जाता। दूकान के मालिक ममदू की ईमानदारी और मेहनत से काफी खुश रहते थे।

इस बार भी ममदू सीधा इसी दूकान पर गया।

"सलाम बाबूजी।"

"आ गये ममदू," आढ़ती बड़ी खुशी से बोला, "आ, ले यह बोरी बिछा ले, उस पर बैठ। ठीक तो रहा न?"

"अल्लाह का फजल रहा बाबूजी।"

"ममदू तू इस बार देर से क्यों आया?"

"एक-दो दिन की भी कोई देर होती है, बाबूजी।"

"अच्छा ममदू, मुझे बहुत काम करना है अभी, तू सुन, तेरे जल्दी न आने से हमने सोचा शायद तू इस बार न आये, इसलिए हमने दूसरे हातो ले लिये हैं।"

"बाबूजी, आपको मेरी ईमानदारी पर शक तो नहीं, आप ऐसे ही तो नहीं कह रहे।"

"हट, बेवकूफ, जा तू गोदामों में जाकर खुद देख ले और सुन, तू ठहरा तो अन्दरून बाजार में ही होगा। इन मजदूरों में से कोई चला गया या कोई बीमार हो गया तो हम तुम्हें खुद बुला लेंगे, तब तक कहीं और गुजारा कर ले।' इसके बाद आढ़ती ने उसको पन्द्रह पैसे देते हुए कहा, चाय पी लेना, सर्दी बहुत है।

आढ़ती ने अपने चारों तरफ लाल इमली का, मोटा कम्बल कस कर लपेट लिया।

ममदू इस बार कुछ ही देर से आया था कश्मीर से, और इसका नतीजा उसे भुगतना पड़ा, सब तरफ से उसे कोरा जवाब ही मिला।

ममदू यह शहर छोड़ना नहीं चाहता था, जाने क्यों ? काफी जगहों पर काम के लिए कोशिश करता रहा।

परिणाम-स्वरूप तीन दिन की बेकारी के बाद उसे एक नई तिमंजिली बन रही बिल्डिंग में ईंटें ढोने का काम मिल गया।

कड़ाके की सर्दी में इस कहानी का कहने वाला सुबह के नौ बजे तक सोया रहता। लेकिन ममदू और उसके सभी साथी सुबह छः बजे उठते। चूल्हा जलाया जाता। शौच जाने वाले जाते, बाकी हुक्का गुड़गुड़ाते। रोटियाँ बनाई जातीं, चाय रखी जाती। और बिना नहाये, बिना हाथ-मुँह धोये सभी लोग, नमकीन चाय में अपनी मोटी-मोटी रोटियाँ डुबो कर बड़े मजे से खाते, जल्दी-जल्दी खाते, गप्पें हाँकते हुए खाते, एक दूसरे को छेड़ते हुए खाते। आठ बजे तक दूकान बन्द हो जाती। सभी अपने-अपने काम पर चले जाते। ममदू का लड़का शरीफा (शरीफ मोहम्मद), कोई कहता सलीफा, भीख माँगने निकल जाता, नंगे पाँव, ठण्डे-मैले कपड़े पहने। खुद ममदू नयी बन रही बिल्डिंग की तरफ चला जाता, ठण्डे-मैले कपड़े पहने, पाँवों में मोटी रस्सियों का बना जूता पहने और मुँह से भाप निकालता हुआ।

ममदू का काम था, दूसरी मंजिल से तीसरी मंजिल तक ईंटें उछालना, जहाँ पर बैठा हुआ कोई दूसरा मजदूर उसे थाम लेता। दोनों थक जाते तो कुछ देर सुस्ता लेते। नहीं तो फिर, ईंटें उछालना। ईंटें थामना। साढ़े बारह बजे तक यही रहता।

फिर आधे घण्टे की छुट्टी।

राज और मजदूर रोटी खाने बैठ जाते। उसके बाद चाय पीते। फिर सिगरेट पीते। साथ-साथ हँसी, साथ-साथ गप्पें।

ममदू को इस वक्त रोटी खाने की आदत नहीं थी, वह एक आने के भुने हुए गर्म चने या गर्म मोमफली लेता, चबाता, ऊपर से पानी पी लेता यदि केवल चने खाये होते। फिर छोटा-सा हुक्का गुड़गुड़ाता और अकेला बैठा रहता। बहुत बात नहीं, बहुत गप्प नहीं। अकेले में ही कोई कश्मीरी

लोकगीत गुनगुनाता, अपने मुँह ही मुँह में।

फिर काम शुरू होता। ईंटों का उछालना, ईंटों का थामना। और शाम के पाँच बजे तक रहता यह सब।

उसके बाद दूकान, अपना घर।

कोई छः बजे आता, कोई सात बजे, कोई आठ बजे।

लेकिन जो भी पहले आता, साथ वाली बेकरी की दूकान से चाशी लेता, चूल्हा जलाता, पतीली में दाल रखता, फिर चावल उबालता।

रात को सब बैठकर इकट्ठे खाते। खाने के बाद दूधवाली नमकीन चाय एक बार फिर चलती। हुक्के गुड़गुड़ाये जाते। और फिर पन्द्रह-बीस आवाजें एक आवाज बनकर कश्मीर का कोई लोकगीत ऊँची आवाज में गाती। फिर कोई और गीत। उसके बाद कोई और गीत। एक डेढ़ घण्टे तक यही सब चलता।

इस कहानी का कहने वाला कश्मीरी जबान नहीं समझता, इसलिए यह कह सकना बहुत कठिन है कि उनके ज़ोर-ज़ोर से गाये गये लोकगीतों का क्या अर्थ है। हाँ, उनके भावों और चेहरों से यही प्रकट होता था कि वे हर्ष-गीत या नई उम्मीदों के गीत गा रहे हैं।

दस-साढ़े दस बजे तक ये सब लोग उसी छोटी-सी दूकान के अन्दर इकट्ठे ही सो जाते। किसी का सर किसी के पाँव पर टिका होता, किसी की टाँग किसी के पेट पर पड़ी रहती, किसी का हाथ किसी की जाँघों पर होता और कोई उल्टा पड़ा होता, कोई एक बल ही पड़ा रहता।' वे सब लोग आपस में इतने सटे हुए होते कि सर्दी उनमें से गुजर ही न पाती। वे एक-दूसरे का हीटर इस्तेमाल करते, और ज़ोर से साँसें छोड़ते। सुबह छः बजे तक सब ऐसे गुमसुम रहते, जैसे किसी गन्दे गढ़े में लावारिस लाशें एक-दूसरे के ऊपर फेंक दी गयी हों और वे स्थिर हों, चुप हों।

इस कहानी का कहने वाला, जहाँ ममदू की दूकान है, उसके सामने वाले मकान में रहता है।

एक दिन ममदू सुबह-ही-सुबह उसके पास आया, उसे सोते से जगाया।

ममदू के सर पर पट्टी बँधी थी और उस पर खून जमा था। ममदू का चेहरा पीला पड़ा था, कुछ ठण्ड की वजह से, कुछ खून बह जाने के कारण।

"ममदू, यह क्या हुआ, यह पट्टी कैसे बाँध ली।"

"बाबूजी, सवाल मेरा नहीं, शरीफा का है।"

"शरीफा को क्या हुआ ?"

"शरीफा कल सुबह का गया हुआ अभी तक नहीं आया। रात को भी नहीं आया बदमाश। पता नहीं इस सर्दी में कहाँ मर गया। बहुत फिक्र लग रही है बाबूजी।"

"अच्छा, बात तो फिकर की है ही। अच्छा, मैं उसे देखूँगा। लेकिन तुम्हारे क्या हुआ यह।"

ममदू वहीं ठण्डी जमीन पर बैठ गया।

"आजकल एक नये बन रहे मकान पर काम करता हूँ, बाबूजी। ईंटें ऊपर तक पकड़ाने का काम मेरे ही जिम्मे है। तीन दिन हो गये, मैंने ईंट ऊपर उछाली, ऊपर वाले आदमी का ध्यान जरा-सा चूका, ईंट मेरे सर पर आ गिरी। मैं तो दो दिन तक बेहोश रहा बाबूजी। कहते हैं बहुत-सा खून निकला। अस्पताल में ही पड़ा रहा। और ऊपर से यह कम्बख्त शरीफा, पता नहीं कहाँ गायब हो गया है।"

हमारा कथाकार नौ बजे अपने मकान से निकला और ढूंढते-ढूंढते बारह बजे शरीफे बदमाश का पता चला। वह रेलवे पुलिस-स्टेशन में बन्द था। लगभग आठ-नौ वर्ष का शरीफा बदमाश। गोरा, सेब के रंग जैसा जिस्म, खाकी बाल और बिल्लौरी आँखें।

बदमाश !

जमानत देकर उसे छुड़ाया गया।

बाद में उसने बयान दिया, "आप जानते हैं, मैं भीख माँगता हूँ, बाबूजी। इसी सिलसिले में कल एक साहब मिले, उन्होंने मुझे बहुत दुत्कारा। कहने लगे, तुम अभी बच्चे हो और बच्चे भीख नहीं माँगा करते। इस बात

की आदत पड़ जाती है और आदमी का अपने पर का हक जाता रहता है। फिर मेरे कहने पर कि भीख न माँगूं तो और क्या करूँ, कहने लगे, मेहनत। मेहनत, कैसे, किसी तरह से? कहने लगे, और कुछ न सही, रेलवे-यार्ड से कोयला उठाकर बेच लिया करो। और लोग भी तो ऐसा करते हैं। बाबूजी, मैं यार्ड में गया। कोयला चुनता रहा और सन्तरी मुझे पकड़ कर ले गया।"

घर आने पर पता चला, ममदू बुखार से तप रहा है और दूकान में अकेला पड़ा तड़प रहा है।

सरीफा को देखकर ममदू उसे पीटना चाहता था, लेकिन बुखार ने उसे खुद मजबूर कर रखा था।

मकान वालों ने किसी दूसरे हातो को ईंटें ढोने के लिए रख लिया था। ममदू छः दिन तक बीमार रहा, सातवें दिन काम पर जब गया, तब उसे इस परिवर्तन का पता चला।

फिर बेकारी।

ढांगू रोड पर एक नया कोयला-डिपो खुला था। आधे दिन की मेहनत के बाद ममदू को इस बात का पता चला। वहाँ गया और उसे काम मिल गया।

अब उसका काम था, बोरियों में कोयला भरना, पीठ पर रखकर उन्हें तराजू पर तोलना, फिर पीठ पर रखकर उन्हें ठेले पर ढोना, ठेला कोयला खरीदने वाले के मकान तक ले जाना, वहाँ से फिर बोरी को पीठ पर झेल कर घर के अंदर लगाना।

सरीफा अब फिर भीख माँगने जाता था, सुबह ही। अब उसने फिर मेहनत करने की कोशिश नहीं की, पुलिस के डर

ममदू इस कोयले के डिपो में केवल एक । बालक

राम-शोरीलाल फर्म के मालिक लाला ने उसे ।

गोदामों से दो-तीन हातो किसी दूसरे टोले में दूसरे

शहर को चले गये थे।

अब फिर गतिविधि वही हो गई थी।

ममदू सुबह उठकर गोदामों की तरफ चला जाता। दौड़धूप, सर्दी में पसीना, बोरियों को पीठ पर लादना, ट्रकों में भरना, ट्रकों से उतारता। दूकानें साढ़े सात बजे शाम को बंद होती थी। ममदू आठ बजे गोदामों से लौटता। फिर साढ़े आठ-नौ बजे चावल और दाल, फिर नमकीन चाय और हुक्का, और ऊँची-ऊँची आवाज में सबका मिलकर कश्मीर के लोक गीत गाना और गपशप। फिर गढ़े में पड़े मुर्दों के समान सब का एक-दूसरे से सटकर सो जाना।

दिसम्बर की बात है।

इस कहानी का कहने वाला, नरेश सक्सेना, काम से कहीं बाहर गया था। वापस आने पर और रात को सोते समय वह इन हातोओं के लोक-गीतो और हँसी-ठट्ठे के इन्तजार में रहा, लेकिन कुछ नहीं, कोई आवाज नहीं। एक दिन, दो दिन, पूरा एक सप्ताह। कोई आवाज नही।

ममदू भी वही था। शेष सभी वहीं थे। फिर?

उसने ममदू को बुलवा भेजा।

उसके आने पर कहा, 'क्यों भाई, क्या बात है, कोई आवाज नहीं, कोई गीत नहीं—'

ममदू ने कहा—'बाबूजी आप तो यहाँ पर नही थे, आपके पीछे एक और नये किरायेदार साथ वाले मकान में आ गये है, हमारे गाने और हँसी-ठट्ठे पर उन्होंने ऐतराज किया है, कहते थे हमारे काम में खलल पडता है। सो उनकी मर्जी, बड़े लोग हैं, हमने सब बंद कर दिया।'

दूसरी सुबह को हमारा कथाकार नये किरायेदार से मिलने गया। वे स्थानीय कालेज में नये प्रोफेसर नियुक्त हुए थे।

वे कहने लगे, "आप कश्मीरियों की साइड लेकर आये हैं। ये कश्मीरी बड़े चापलूस और कमीने होते हैं। खामखाह जोर-जोर से हाथ हिला कर ऊँची आवाज में बात करते हैं। मैं इनसे सख्त नफरत करता हूँ। भला रात को भी गाने और हो-हल्ला करने का कोई तुक है। यह शरीफों का मुहल्ला

हैं। और फिर हमने काम...."

हमारे कथाकार ने दलील दी, 'मुझे इससे सरोकार नहीं कि कश्मीरी कैसे होते हैं, बुरे या अच्छे। शेष आपकी बात ठीक है कि गाने-बजाने का समय, विशेषकर मुहल्ले में, उनके लिए उचित नहीं। लेकिन प्रश्न यह है कि उन्हें केवल यही समय तो मिल पाता है सारे दिन में। इतनी कड़ी मेहनत के बाद यह गरीब मजदूर यदि दो घड़ी अपने मनोरंजन के लिए........'

'नहीं साहब। उन्हें चाहिए कि वे जगह बदल लें।

हमारे कथाकार ने आगे बात नहीं बढ़ाई।

लेकिन पता चला कि प्रोफेसर साहब रात के वक्त कोई काम-वाम नहीं करते। उन्हें इस वक्त "विविध-भारती" से गाने सुनने होते हैं और अपने इस काम में वे किसी भी प्रकार का कोई खलल बर्दाश्त करने को तैयार नहीं।

'ममदू, तुम लोग पहले की तरह अपना गाना-बजाना जारी रखोगे। नया किरायेदार फिर ऐतराज करे तो हम उससे बात करेंगे।'

हमारा कथाकार सोचता था कि वह इन हातोओं की तरफदारी क्यों कर रहा है। उनकी ऊँची-ऊँची आवाजों से उसके काम में भी कई बार विघ्न पड़ जाता था। फिर ये लोग कश्मीरी जबान में बोलते थे, जिसके बारे में वह क-ख भी नहीं जानता। तो भी, वह सोचता है, उनकी आवाज, उनके बात करने का अजीब ढंग और कश्मीरी लोकगीतों की अलग-अलग धुनें, यह सब उसे बहुत अच्छी लगती थी?

लोक-गीत, हंसी-मजाक, गप-शप, सब फिर शुरू हो गया था।

दूसरी ही सुबह मुहल्ले में झगड़ा हो गया। मुख्य विरोधी थे हमारे कथाकार और प्रोफेसर। काफी ले-दे हुई, काफी बकवास हुई, गालियों तक नौबत आ गई।

हमारे कथाकार की एक ही जिद थी, "अगर आपके रेडियो की ऊँची आवाज गली में और दूसरे घरों तक जा सकती है, तो ये हातो भी अपने

कमरे में बैठकर गा सकते हैं, इनकी आवाज भी चाहे जहाँ तक जायें।"

इसके कुछ दिन बाद प्रोफेसर ने मकान बदल लिया था।

दिसम्बर की सर्दी शवाब पर थी। ऊपर से जनवरी की सर्दी के आगमन का एहसास। बारिशें। कई बार ओले भी पड़ जाते थे। शरीफा अब फिर सुबह ही सुबह भीख माँगने निकल जाता। नंगे पाँव, खुला सिर, कमीज के बटन टूटे और मुंह से भाप निकालता हुआ।

ममदू का भी यही हाल। पाँव में मोटी रस्सियों की पहाड़ी जूती, छाती नंगी, सर खुला और मुंह से भाप निकालता हुआ।

सर्दी के कारण एक दिन ममदू के पांव बुरी तरह सूज गये। दर्द और चलना नामुमकिन। तीन दिन तक लगातार वह अपने अंधेरे कमरे में पड़ा रहा। दूकान के 'लाला' ने इतनी मेहरबानी की, जब वह फिर काम पर गया, उसे जवाब नहीं दिया काम से, अलबत्ता उसके तीन दिन के पैसे अवश्य काट लिए।

दो दिन की लगातार बारिश आज रुकी थी। धूप भी दिल खोलकर निकली था। शरीफा सुबह ही सुबह अपने काम पर चला गया था।

आज इतवार था, मतलब कि दूकानों का काम बन्द था। ममदू अपनी दूकान पर बैठा अपनी फटी कमीज में से जुयें बीन रहा था। दूसरे हातो भी बैठे थे, कोई रजाई से जुयें निकालता था, कोई कच्छे से, कोई पायजामे से।

बेकरी के बाहर गली में कुर्सी बिछाकर नरेश आज का अखबार देख रहा था।

लगभग साढे दस बजे के करीब एक हातो दौड़ा-दौड़ा आया।

"ओ ममदू, ओ ममदू।"

"क्या है ?"

"शरीफा ट्रक के नीचे आकर कुचला गया।" वह हाँफ रहा था।

"क्या ?"

"मर गया।"

नागरिक

मदन को हम लोग मद्दी कहते थे और प्रकाशचंद को प्रकाशो या प्रकाश कौर। प्रकाशो या प्रकाश कौर हम उसे मजाक में कहते थे। लेकिन उसके साथ का यह मजाक सिर्फ हम दो-तीन लोगों तक ही सीमित था। मेरे, मद्दी और साईंदास तक ही। वरना प्रकाशो जैसे चक्कूबाज से किसी अन्य की मजाक करने की हिम्मत हो नहीं हो सकती थी।

मद्दी और प्रकाशो व्यापार में पार्टनर थे। वे गांधी चौक में अपने ठेले के साथ बारी-बारी से छह-छह घंटे खड़े होते थे। अधिकतर अपने ठेले पर वे फ्रूट ही लगाते थे, जैसे आम, लीची, केला, संतरा, नाशपाती, खूबानी, सेब, अंगूर। उनका एक दिन का औसत मुनाफा पंद्रह से बीस रुपये तक का था। जिंदगी कुछ बुरी नहीं कट रही थी। लेकिन इतना जरूर था कि हर बुरे-गंदे मौसम में ठेले के साथ खड़ा होना पड़ता था। और यह काफी बड़ी मुसीबत थी। मगर कोई चारा नहीं था, और यह सब ऐसे ही चल रहा था।

प्रकाशो से मेरा पहले परिचय नहीं था। मद्दी की मार्फत उससे जान-पहचान हुई थी। मद्दी मेरा सहपाठी था।

मद्दी हिन्दुस्तान-पाकिस्तान बनने पर जिला लायलपुर से अपने बाप के साथ यहाँ आया था और फिर वे लोग यहीं बस गये थे। मद्दी की माँ को

वहाँ से भागते समय कुछ लोगों ने देख लिया था और वे उसे फाँस कर अपने साथ ले गये थे। मद्दी जब यहाँ आया तो नौ-दस साल का था। तीसरी कक्षा में हम दोनों ने म्यूनिसपैलिटी के स्कूल में इकट्ठे पढ़ना शुरू किया था। उसके बाप को कोई और काम नहीं मिला तो उसने गांधी चौक में ठेला लगाना शुरू कर दिया था। हालांकि उन दिनों भी शाम के समय मद्दी अपने बाप के साथ ठेले पर खड़ा होता था, फिर भी तब उसे बहुत शर्म लगती थी और बाजार से गुजरने वाले अपने हर परिचित से वह मुंह छिपाने की चेष्टा किया करता था। परन्तु जब उसके बाप की लंबी बीमारी के बाद मृत्यु हो गयी, तो पंद्रह-बीस दिन के सोच-विचार के बाद उसने अपनी शर्म को जूता मारा था और अपने बाप के ठेले के साथ गांधी चौक में डट कर खड़ा हो गया था। यह वह समय था, जब हम दोनों आठवीं कक्षा में थे और उसे अपनी पढाई बीच में ही छोड़ देनी पडी थी। वैसे भी, मेरी तरह, पढने में वह अधिक तेज नहीं था। और यदि उसे ठेला न भी लगाना पड़ता, तो मैट्रिक के बाद वह अधिक-से-अधिक सवा सौ-डेढ़ सौ वाला क्लर्क बन जाता।

लेकिन मद्दी के अब खुद ठेला लगा लेने से मुझे इतना जरूर मजा हो गया था कि मौसम के अनुसार मुझे अच्छा फ्रूट खाने को मिल जाता। वैसे भी मद्दी मेरा खास मित्र था और पहले की तरह अब भी समय मिलने पर वह हमारे घर आया करता था। मेरी माँ उसे बहुत चाहती थी, शायद इसमें उनका यह भाव भी रहा हो कि उसकी अपनी माँ नहीं है। और दीवाली, दशहरा आदि त्योहारों पर तो वह मुझसे उसे अवश्य घर बुलाने के लिए कहती थी। परंतु उसके प्रति मेरे पिता का रुख अब काफी बदल गया था। उसका बाप जीवित था, तब तो कोई बात नहीं थी। परंतु पिता अब उसके हमारे घर आने पर ऐतराज करते थे और मुझे डाँटते थे कि तुम एक बद-माश और लोफर लड़के के साथ न घूमा करो, उसको तो आगे पढ़ना-लिखना है नहीं और तुम भी उसके पीछे चोपट हुए जा रहे हो। पिता की नजरों में, जब से मद्दी ने खुद ठेला लगाना शुरू किया था, वह गिरे हुए

चरित्र वाला हो गया था। जबकि मेरे लिए वह एक संघर्षशील चरित्र था और मैं उसकी कद्र करता था। कद्र-वद्र भी क्या, बस वह मेरा दोस्त था। पिता के डांटने-डपटने के बावजूद मैं उसे घर पर बुलाता था। और पिता की सीधे उससे या उसके सामने मुझसे कुछ कहने की हिम्मत न होती थी। मैं जब नौवीं कक्षा में पढ़ता था, तो मद्दी कभी-कभी बातचीत के दौरान अचानक कह बैठता था—यार, मेरे बाऊजी अभी न मरे होते तो मैं अभी थोड़ा और पढ़ना चाहता था। इतना कहते ही वह कुछ उदास हो जाया करता था।

मद्दी और मैं अब भी इकट्ठे ही सिनेमा जाया करते थे। परंतु अब वह पहले जैसा तरीका न था। पहले तो हम 'इधर-उधर से पैसे मार कर' और 'घर से भाग कर' सिनेमा जाया करते थे। दरअसल पहले की बातें ही कुछ और थीं। सारा-सारा दिन मटरगश्ती करते रहना, बिना मतलब आवारा घूमते रहना, खेतों और बागों में चोरी से घुस कर गन्ना, मूली, आम और अमरूद तोड़ते रहना, सिनेमा-हॉल के बाहर घंटों बैठ कर डायलॉग-गाने सुनते रहना, छुट्टी के समय लड़कियों के स्कूल के सामने खड़े हो जाना, और कई प्रकार की धमा-चौकड़ी। उन्हीं दिनों कभी मद्दी ने बताया था कि हिंदुस्तान-पाकिस्तान बनने पर जब वे लोग यहाँ आये ही आये थे, तो तब उसके बाप ने अभी गांधी चौक में ठेला लगाना शुरू नहीं किया था, और उसे बस-स्टेशनों और गाड़ियों पर मीठी गोलियाँ और बिस्कुट एक ही थाली में सजा कर बेचने पड़ा करते थे।—यदि मैं उस काम में ही लगा रहता तो तब तो बिलकुल ही कुछ न पढ़ पाता, लेकिन मेरे बाऊजी ने ठेला लगाना शुरू कर दिया तो पता नहीं क्या सोच कर उन्होंने मुझे स्कूल में दाखिल करा दिया।

मद्दी को जब ठेला लगाते लगभग डेढ़ साल हो गया था तो उसका परिचय प्रकाशो से हुआ। प्रकाशो की आयु मद्दी से आठ-नौ साल अधिक थी। वह खूब जमानासाज आदमी था और लड़ाई-झगड़े में बहुत तेज था। एक-दो बार पुलिस वालों की भी पिटाई कर चुका था। लेकिन उसमें एक

वहाँ से भागते समय कुछ लोगों ने देख लिया था और वे उसे फाँस कर अपने साथ ले गये थे। मद्दो जब यहाँ आया तो नौ-दस साल का था। तीसरी कक्षा में हम दोनों ने म्यूनिसपैलिटी के स्कूल में इकट्ठे पढना शुरू किया था। उसके बाप को कोई और काम नहीं मिला तो उसने गांधी चौक में ठेला लगाना शुरू कर दिया था। हालांकि उन दिनों भी शाम के समय मद्दो अपने बाप के साथ ठेले पर खड़ा होता था, फिर भी तब उसे बहुत शर्म लगती थी और बाजार से गुजरने वाले अपने हर परिचित से वह मुँह छिपाने की चेष्टा किया करता था। परन्तु जब उसके बाप की लंबी बीमारी के बाद मृत्यु हो गयी, तो पंद्रह-बीस दिन के सोच-विचार के बाद उसने अपनी शर्म को जूता मारा था और अपने बाप के ठेले के साथ गांधी चौक में डट कर खड़ा हो गया था। यह वह समय था, जब हम दोनों आठवीं कक्षा में थे और उसे अपनी पढ़ाई बीच में ही छोड़ देनी पड़ी थी। वैसे भी, मेरी तरह, पढ़ने में वह अधिक तेज नहीं था। और यदि उसे ठेला न भी लगाना पड़ता, तो मैट्रिक के बाद वह अधिक-से-अधिक सवा सौ-डेढ़ सौ वाला क्लर्क बन जाता।

लेकिन मद्दो के अब खुद ठेला लगा लेने से मुझे इतना जरूर मजा हो गया था कि मौसम के अनुसार मुझे अच्छा फ्रूट खाने को मिल जाता। वैसे भी मद्दो मेरा खास मित्र था और पहले की तरह अब भी समय मिलने पर वह हमारे घर आया करता था। मेरी माँ उसे बहुत चाहती थी, शायद इसमें उनका यह भाव भी रहा हो कि उसकी अपनी माँ नहीं है। और दीवाली, दशहरा आदि त्यौहारों पर तो वह मुझसे उसे अवश्य घर बुलाने के लिए कहती थी। परंतु उसके प्रति मेरे पिता का रुख अब काफी बदल गया था। उसका बाप जीवित था, तब तो कोई बात नहीं थी। परंतु पिता अब उसके हमारे घर आने पर ऐतराज करते थे और मुझे डाँटते थे कि तुम एक बदमाश और लोफर लड़के के साथ न घूमा करो, उसको तो आगे पढ़ना-लिखना है नहीं और तुम भी उसके पीछे चौपट हुए जा रहे हो। पिता की नजरों में, जब से मद्दो ने खुद ठेला लगाना शुरू किया था, वह गिरे हुए

चरित्र वाला हो गया था। जबकि मेरे लिए वह एक संघर्षशील चरित्र था और मैं उसकी कद्र करता था। कद्र-वद्र भी क्या, बस वह मेरा दोस्त था। पिता के डाँटने-डपटने के बावजूद मैं उसे घर पर बुलाता था। और पिता की सीधे उससे या उसके सामने मुझसे कुछ कहने की हिम्मत न होती थी। मैं जब नौवीं कक्षा में पढ़ता था, तो मद्दी कभी-कभी बातचीत के दौरान अचानक कह बैठता था—यार, मेरे बाऊजी अभी न मरे होते तो मैं अभी थोड़ा और पढ़ना चाहता था। इतना कहते ही वह कुछ उदास हो जाया करता था।

मद्दी और मैं अब भी इकट्ठे ही सिनेमा जाया करते थे। परंतु अब वह पहले जैसा तरीका न था। पहले तो हम 'इधर-उधर से पैसे मार कर' और 'घर से भाग कर' सिनेमा जाया करते थे। दरअसल पहले की बातें ही कुछ और थीं। सारा-सारा दिन मटरगश्ती करते रहना, बिना मतलब आवारा घूमते रहना, खेतों और बागों में चोरी से घुस कर गन्ना, मूली, आम और अमरूद तोड़ते रहना, सिनेमा-हॉल के बाहर घंटों बैठ कर डायलॉग-गाने सुनते रहना, छुट्टी के समय लड़कियों के स्कूल के सामने खड़े हो जाना, और कई प्रकार की धमा-चौकड़ी। उन्हीं दिनों कभी मद्दी ने बताया था कि हिंदुस्तान-पाकिस्तान बनने पर जब वे लोग यहाँ आये ही आये थे, तो तब उसके बाप ने अभी गांधी चौक में ठेला लगाना शुरू नहीं किया था, और उसे बस-स्टेशनों और गाड़ियों पर मीठी गोलियाँ और बिस्कुट एक ही थाली में सजा कर बेचने पड़ा करते थे।—यदि मैं उस काम में ही लगा रहता तो तब तो बिल्कुल ही कुछ न पढ़ पाता, लेकिन मेरे बाऊजी ने ठेला लगाना शुरू कर दिया तो पता नहीं क्या सोच कर उन्होंने मुझे स्कूल में दाखिल करा दिया।

मद्दी को जब ठेला लगाते लगभग डेढ़ साल हो गया था तो उसका परिचय प्रकाशो से हुआ। प्रकाशो की आयु मद्दी से आठ-नौ साल अधिक थी। वह खूब दमानासाज आदमी था और लड़ाई-झगड़े में बहुत तेज था। एक-दो बार पुलिस वालों की भी पिटाई कर चुका था। लेकिन उसमें एक

सिफ्त थी कि व्यापार-व्यवहार में वह बहुत ईमानदार था, विशेषकर मित्रों के सामने तो वह सर झुकाये रहता था। मद्दी शुरू-शुरू में उसे अपना पार्टनर बनाते हुए डरा था कि कहीं यह सारी रकम ही तबाह न कर दे, लेकिन जैसा उसने सोचा था, वैसा कुछ हुआ नहीं। और अब तो सात-आठ सालों से ये साथ थे।



मैं जब कालेज के पहले साल में ही था, तो घर में कुछ ऐसे अजीब हालात हुए कि पिता ने मुझे स्पष्ट कह दिया, वह मेरा कालेज का फीस आदि का खर्च बरदाश्त न कर सकेंगे। उन्होंने यह भी कहा कि मुझे कहीं कोई नौकरी या कोई दूसरा काम ढूंढ लेना चाहिए और उनकी भी मदद करनी चाहिए। पिता एक आढ़ती के पास मुनीम थे और उनकी आमदनी कुछ ज्यादा नहीं थी। उनकी यह नौकरी भी ऐसी थी कि किसी से कह-कहलवा कर वह मेरा कहीं काम भी नहीं लगवा सकते थे। इसका नतीजा यह हुआ कि मैं एक तरह से निठल्ला हो गया। शहर में कहीं नौकरी या कोई दूसरा काम भी नहीं मिल रहा था, और तब मैं या तो आवारा घूमता रहता या फिर जासूसी और रूमानी उपन्यास किराये पर ले कर दिन-रात पढ़ता रहता। शहर अधिक बड़ा भी नहीं था, इसलिए काम आदि मिलने की भी बहुत कम आशा थी। शहर में मुझसे भी पहले कई लड़के बेकार घूम रहे थे। कभी मैं यह भी सोचता था कि मद्दी की तरह ही मैं भी बाजार में ठेला लगा लूं। इसमें बुरा भी क्या है! अगर रोज के पांच-छह रुपये या तीन-चार रुपये भी मिलें तो यह काफी रकम होगी। लेकिन पता नहीं क्यों, मैं यह सब सोचता ही रह जाता, मुझसे यह काम कभी हो नहीं पाया। इस नकार में मेरी शर्म शामिल नहीं थी, परंतु अंदर से इसके लिए इच्छा ही नहीं होती थी। और इन्हीं दिनों मैं एक व्यक्ति के संपर्क में आया जो मुझे खतरे वाले कामों की ओर ले गया। ये काम कानून की निगाह में नाजायज थे और पुलिस का खौफ बना रहता था। ये काम इतने बड़े भी नहीं थे, परंतु नाजायज तो नाजायज है, ऐसा काम चाहे छोटा हो या बड़ा।

जैसे एक मुख्य काम यह था कि शहर से दो-ढाई मील बाहर सांसियों के डेरे से ठर्रे की बोतलों का शहर में लाना। वहाँ से एक बोतल सवा रुपये की मिल जाती थी और वह शहर में तीन रुपये की बिकती थी। मैं रोज छह-सात बोतलें ले आता था। कुछ सीधे खुद बेच लेता था, कुछ प्रकाशो की मार्फत। जो बोतलें प्रकाशो की मार्फत बिकती थीं, उनके लिए उसे प्रति बोतल आठ आने 'दलाली' देनी पड़ती थी। लेकिन कुल मिला कर मुझे काफी पैसे बच जाते थे। इस तरह से मैं घर वालों की मदद भी करने लगा था। हालांकि मैं घर में बताये बिना यह नाजायज काम करता था, फिर भी उन्हें पैसे देते समय कोई-न-कोई बहाना लगा देता था। सबसे बड़ी बात थी कि मैं पुलिस की नजरों में नहीं आ पाया था, नहीं तो अपनी कमाई में से पुलिस वालों को भी उनका 'हिस्सा' देना पड़ता। इस काम के लिए सबसे बड़ा आकर्षण मेरे लिए यही था कि इसमें बहुत कम खर्च होता था और पैसे अच्छे बन जाते थे। इसके साथ ही मैं अफीम, चर्स, गाँजे को इधर-उधर 'ढोने' का काम भी करने लगा था। इससे भी कभी-कभी अच्छे पैसे बन जाते थे। परंतु यह काम मुझे बहुत कम मिल पाता था, क्योंकि 'मालिकों' की नजर में मैं इतना होशियार नहीं था।



शुरु-शुरू में मद्दो ने मेरे इस काम पर मुझसे नाराजगी जाहिर की थी। लेकिन फिर जब मुझे इस काम का चस्का ही लग गया और मैंने यह काम नहीं छोड़ा तो वह भी धीरे-धीरे नर्म पड़ गया। और इसीलिए कभी-कभी मद्दो को देख कर और अपने बारे में भी सोच कर मुझे हँसी आ जाती थी और मुझे अपने स्कूल के हिंदी वाले मास्टर याद आ जाते थे। उनका नाम पंडित नित्यानंद था। चाहे कोई बच्चा शरारतें करे या स्कूल का काम न करे, वह किसी को डाँटते या मारते नहीं थे, क्योंकि उनका कहना था कि पता नहीं इनमें से कौन बच्चा आगे जाकर सुभाष निकल आये, या नेहरू निकल आये या गांधी। इसलिए बच्चों को डाँट कर या मार कर वह पाप के भागीदार क्यों बनें! अब कभी-कभी मैं और मद्दो उनकी बातों

को याद करके हँसा करते थे। मद्दी ठेला लगाने लगा था, मैं नाजायज कामों में पड़ गया था, साईंदास अस्पताल में कंपाउंडर बना हुआ था, मुल्खराज अपने बाप की बजाजी की दुकान पर बैठता था, गुरांदित्ता एक प्राइमरी स्कूल में मास्टर हो गया था, बिहारी लाल म्यूनिसपैलिटी में क्लर्क था, राजेंद्र ने सोडावाटर का काम खोल लिया था, दलजीत सिंह ने साबुन की दुकान कर ली थी, शिवकुमार अपने बाप की दुकान पर दाढ़ियाँ बनाता था, हंसराज ने तीन-चार भैंसें रख ली थीं, जग्गी एक साइकिल-रिपेयर की दुकान में बैठा सारा दिन साइकलें ठीक करता रहता था। हमारे साथियों में से आठ-दस प्रतिशत लड़के ही मुश्किल से कालेज में भरती हो पाये थे, और उनमें से चार-पाँच ही बी० ए०, एम० ए० करके छोटी-मोटी नौकरियों में लग पाये थे, या एक-दो कहीं अफसर लग गये थे। परंतु हम में से सुभाष, गांधी या नेहरू कोई नहीं बन पाया था। लेकिन अपने हिंदी वाले मास्टर पंडित नित्यानंद की बात याद आते ही मैं मद्दी को सुभाष कह कर मजाक किया करता और वह मुझे नेहरू कह कर और हम लोग खूब हँसा करते थे। या हम किसी सहपाठी से भी मिलते तो उसे सुभाष, नेहरू या गांधी, कुछ भी कह कर उसका खूब मजाक उड़ाते।



यही दिन थे जब एक सुबह प्रकाशो हमारे घर सुबह-ही-सुबह आया। इससे पहले वह हमारे घर कभी नहीं आया था। मैं अभी सो कर उठा ही था और बिस्तर में बैठा चाय पी रहा था। मैंने उसे अपने पास ही बुलवा लिया और उसके लिए भी चाय मंगवा दी।

मैंने सोचा, कोई जरूरी काम ही रहा होगा, तभी यह मेरे पास इतनी सुबह-सुबह आया है। मद्दी तो इस समय आ नहीं सकता था, उसने इसे भेज दिया होगा। मद्दी को सुबह के समय माल खरीदने के लिए मंडी जाना पड़ता था, और ऐसा रोज ही होता था। मद्दी का खुद मंडी जाना इसलिए भी जरूरी होता था कि वहाँ हमारा एक मित्र जुगल किशोर था, जो कि पाँचवीं और छठी कक्षा में हमारे साथ ही पढ़ा था। जुगल किशोर

वहाँ अपने बाप के साथ काम करता था, और वे लोग फ्रूट और सब्जों के बड़े आढ़ती थे। जुगल किशोर मद्दी को माल दिलवाता हुआ पैसे में तो कमी नहीं करता था, परंतु पुराने दिनों के लिहाज की खातिर वह मद्दी को माल अच्छा दिलवा देता था। और यह बहुत बड़ी बात थी। जुगल किशोर को प्रकाशो से पता नहीं क्यों कुछ घृणा-सी थी, इसीलिए जुगल किशोर ने मद्दी से स्पष्ट कह रखा था कि वह प्रकाशो को न भेज कर खुद ही आया करे।

मेरी चारपाई के बगल ही मेरा छोटा भाई और छोटी बहन बैठे थे, इसलिए प्रकाशो कुछ बोला नहीं और चुपचाप बैठा चाय पीता रहा। मैं इस बात पर हैरान भी हो रहा था कि प्रकाशो को इतनी समझ कैसे है कि कौन-सी बात कहाँ करनी चाहिए और कहाँ नहीं। मैं चाय पी चुका था। मैंने प्रकाशो से कहा कि अभी चलते हैं, और यह कह कर मैं बाथरूम की तरफ चला गया। दस-पंद्रह मिनट बाद हम दोनों मकान से बाहर आ गये।

तब प्रकाशो ने कहा—रात को, यार, बहुत झगड़ा हो गया। आश्चर्य से मेरे मुँह से निकला—अरे!

—हाँ यार, प्रकाशो बोला, मद्दी को भी चोटें-चोटें आयी हैं।

मैं हैरान था—अच्छा! और हम चलते रहे। फिर एक-दो क्षण बाद मैंने उससे पूछा—तो तुम आज मंडी नहीं गये?

—नहीं यार, अब दो-तीन दिन मैं भी आराम करूँगा, काम-वाम तो होता ही रहता है। फिर उसने अचानक पूछा—तुम अब कहाँ चल रहे हो? वह चलता-चलता रुक गया। मैं भी रुक गया।

मैंने हँसते हुए कहा—क्यों। चलो, कहीं बैठते हैं, मैं जरा मद्दी को भी देख आऊँगा।

इसके बाद वह कहने लगा—जो खास बात मैं तुम्हें बताने आया था, वह तो रह ही गयी। वह यह कि आज से तुम घर से बाहर नहीं निकलोगे और 'सासियों के डेरे' तो नहीं ही जाओगे।

—लेकिन क्यों ? ऐसा क्या हो गया ?

प्रकाशो कहने लगा—जो नया थानेदार गुरमीतसिंह दो महीने पहले आया है, उसने परसों से अचानक बहुत सख्ती शुरू कर दी है। वह सब लोगों को पकड़ रहा है और उन पर जबरदस्त मार पड़ रही है। अब तक, तुम यह समझो कि उसने तकरीबन सभी छोटे-बड़े लोगों को घेर लिया है, अफीम-गाँजे वाले, सट्टे वाले, शराब वाले, यहाँ तक कि माता गली वाली रंडियों को भी बुलवा कर उसने खूब पिटवाया है। वह उनकी खूब मरम्मत कर रहा है। ऐसा लगता है कि किसी बड़े आदमी ने या तो पुलिस वालों की नालायकी की शिकायत चीफ मिनिस्टर से या बड़े अफसरों से कर दी है और या यह बिल्कुल ही धर्मात्मा और सच्चा आदमी है। इसलिए गलत काम करने वाले सभी लोगों को मार-डपट कर शहर में शान्ति कायम करना चाहता है।

मैंने कहा—अरे नहीं प्रकाशो, तुम्हारी ये दोनों बातें गलत हैं। अव्वल तो किसी ने शिकायत की नहीं होगी। और अगर की भी होगी तो *सख्ती करने से क्या हो जायेगा ? कौन-सा ऐसा शहर बचा है जहाँ ये काम न होते हों ?* और ये काम तो सख्ती करने के बावजूद भी होते रहेंगे। और किसी थानेदार का सच्चा और धर्मात्मा होना एकदम व्यर्थ-सी बात है, ये लोग सात जन्म लें, तब भी ऐसे नहीं बन सकते। दरअसल बात यह होगी कि यह थानेदार अधिक सख्ती दिखा कर दूसरे थानेदारों से अधिक रकम खाना चाहता होगा। समझे कि नहीं ? मुझे तो इस सख्ती के पीछे और कोई कारण नजर नहीं आता। मैंने एक-दो क्षण बाद मुसकराते हुए कहा—लेकिन तुम मुझे बाहर निकलने से मना क्यों कर रहे हो ? मैं तो पुलिस की नजर में भी नहीं हूँ !

प्रकाशो ने मुसकराते हुए कहा—यह तुम्हारी खामखयाली है कि तुम्हें और तुम्हारे काम को पुलिस न जानती होगी। यह तो कभी हो ही नहीं सकता। *ये लोग गिद्ध जैसी निगाहें रखते हैं* और मौका आने पर एकदम से नोंच लेते हैं। ये लोग तुम्हें अब तक छोड़े रहे, इसका मतलब यह न

समझना कि ये तुम्हें हमेशा के लिए छोड़े ही रहेंगे और अब तो इनके हाथ में एक मौका है। मेरा खयाल है ये लोग तुम्हें ढूंढ ही रहे होंगे।

अब मैं निश्चय ही डर गया। मेरे चेहरे पर हलका-सा पसीना भी जम गया।

प्रकाशो ने कहा—अब तुम यहाँ से वापस चले जाओ, मेरे साथ बाजार में न आओ। और घर पर ही रहना। जब यह खतरा टल जायेगा तो मैं तुम्हें बता दूँगा।

मैंने कहा—लेकिन मैं मद्दी को देखना चाहता था।

उसने कहा—मद्दी को मिलने की कोई जरूरत नहीं है। और उसको पता है कि मैं यह बात तुम्हें बताने तुम्हारे पास आया हुआ हूँ। वह दो-चार रोज में जब ठीक हो जायेगा तो खुद ही तुम से मिलने घर पर आ जायेगा।

इसके बाद प्रकाशो चला गया। मैं घर लौट आया।

●

और ये मेरे लिए वाकई बड़ी बोरियत के दिन थे। मैं घर में तबीयत खराब होने के बहाने से पड़ा रहता। सारा दिन किराये के जासूसी उपन्यास पढ़ता रहता। या फिर सारा दिन खाता-पीता रहता, या सोया ही रहता। लेकिन अभी दो ही दिन तक ऐसा कार्यक्रम चला था, कि घर में पड़े रहने से दिमाग में उलझन बढ़ गयी और हर समय मूड उखड़ा-उखड़ा लगने लगा था।

इसी बीच में पता चला कि हमारे सामने के पड़ोसी का लड़का सोमी बदल कर यहाँ पर आ गया है। पता क्या चला, वह अपने घर पहुँचते ही फिर सीधा मुझसे मिलने आ गया। मुझे बड़ी खुशी हुई कि एक साथी बात करने को मिल गया। सोमी ने बताया कि वह दस मील दूर माधोपुर वाले कैंप में बदल कर आया है।

सोमी मुझसे ढाई साल बड़ा था। स्कूल में भी मुझसे वह दो साल सीनियर था। मोहल्ले में हम इकट्ठे ही गिल्ली-डंडा और पिल्ले-गोली

खेलते रहे थे। ये सब जिंदगी के शुरू दिनों की बातें थी। सोमी पढ़ने में बहुत तेज था, और उसके घर वालों की माली हालत भी अच्छी थी। इसलिए वह आगे-आगे पढ़ता रहा था और बी० ए० करने के बाद वह मिलिट्री में सेकंड-लेफ्टिनेंट लग गया था।

सोमी काफी देर तक मेरे पास बैठा रहा और फिर तरह-तरह की बातें होती रहीं। वह अब कश्मीर से बदल कर आया था और मेरे लिए वहाँ से अखरोट लाया था।

वह जब चला गया तो अचानक मुझे एक खयाल आया और अपने इस खयाल से मैं काफी खुश हुआ। मैंने सोचा, सोमी अब पावर में है, वह मेरी मदद कर सकता है। मैं अगर उसे सारी बात सच-सच बता दूँगा तो वह मुझे न नहीं करेगा। फिर मैं देर तक इसी विषय पर सोचता रहा और खुश होता रहा।

मैं यही बात प्रकाशो को बताना चाहता था। लेकिन अब मुसीबत यह थी कि मैं घर से बाहर नहीं निकल सकता था। पुलिस का बहुत डर था। और पुलिस का नाम याद आते ही मेरी कंपकंपी छूट जाती थी और मेरे चेहरे पर हलका-सा पसीना उभर आता था।

लेकिन प्रकाशो से मिलने की मुझे बहुत जल्दी थी। उससे मैं तुरंत मिलना चाहता था। इसलिए रात के जब साढ़े सात-आठ बज गये तो मैं थोड़ा साहस बटोर कर घर से निकल पड़ा।

मेरा विचार था कि प्रकाशो साईंदास के यहाँ जरूर मिल जायेगा। साईंदास अस्पताल में कंपाउंडर था, और उसे रहने के लिए जो क्वार्टर मिला हुआ था, वहाँ शाम के समय से लेकर रात के ग्यारह-बारह बजे तक जूआ चलता रहता था। वहाँ सिर्फ चार-छह दोस्त लोग ही आया करते थे और जूआ भी ज्यादा बड़ा नहीं होता था। पुलिस का वहाँ कोई खतरा नहीं था, क्योंकि दोस्तों में ऐसा कोई नहीं था जो यहाँ की बात बाहर बतायेगा। प्रकाशो और मैं भी अकसर शाम को वहाँ बैठे रहते थे। साईंदास जहाँ खुद जूए का रसिया था, प्रकाशो को भी जूए का बहुत शौक

था। मैंने सोचा कि प्रकाशो यदि वहाँ न भी मिला, तो मैं साईंदास को उसे ढूंढ़ने के लिए भेजूंगा और खुद उसी के क्वार्टर में बैठा रहूँगा।

प्रकाशो को मैं बताना चाहता था कि मेरा दोस्त सोमी यहाँ कैंप में मेजर होकर आ गया है, इसलिए अब शहर में रम सप्लाई करने का धंधा बड़े मजे से किया जा सकता है, क्योंकि मिलिट्री में रम की एक बोतल नौ रुपये बारह पैसे की मिलती थी और वह शहर में साढ़े तेरह-चौदह रुपये की बिक जाती थी। यह खासे अच्छे मुनाफे का काम था और इसमें ठर्रा बेचने से खतरा भी काफी कम था। शहर में पहले भी एक-दो लोग और थे जो किसी-न-किसी मिलिट्री वाले या कैंटीन वाले से मिल-मिला कर यह धंधा कर रहे थे। मैं प्रकाशो को यही बताना चाहता था कि वह यह काम शुरू करने के लिए कल से ही तैयार हो जाये। और बोतलें लेने के लिए पहले-पहले उसे ही कैंप में जाना पड़ा करेगा, क्योंकि जब तक पुलिस का खतरा है, मैं तो बिल्कुल घूम-फिर नहीं सकता। मैं जानता था कि सोमी के लिए रोज तीन, चार या पाँच बोतलें कैंप से निकलवा लेना कोई मुश्किल काम न होगा।

मैं जब साईंदास के क्वार्टर में दाखिल हुआ तो जैसा मेरा खयाल था प्रकाशो मुझे वहीं मिल गया। उसके पास ही मद्दी भी बैठा हुआ था। मद्दी के सर पर पट्टी बंधी थी।

बच्चे

यह अभी तक वैसे ही रो रहा था। लगभग दो घण्टे हो गये थे। दूसरा शो भी शुरू हो चुका था। वह वैसे ही गुमसुम एक पिल्ले-सा सिकुड़ा-सिमटा बैठा था और बराबर सिसकियाँ भरे जा रहा था।

गुरु ने भी फिर उसे कुछ नहीं कहा था। न ही फिर उसने उसकी तरफ देखा था, और न ही उससे कुछ बोला था। बल्कि वह अपने काम में मस्त हो गया था, और उसका ध्यान पूरी तरह से आने-जाने वाले गाहकों की तरफ था।

अब बारिश एकदम बन्द थी, और कहीं-कहीं से बादल फट जाने से काफी उजाला हो गया था। हालाँकि धूप अभी भी नहीं निकल पाई थी।

जिस दूसरे नये लड़के को उसने पापड़ों की टोकरी के साथ दूसरे शो के शुरू में हाल के अन्दर भेज दिया था, वह भी अब लौट आ चुका था। वह लड़का खुश था, और चल रही फिल्म का कोई गीत धीरे-धीरे गुनगुना रहा था। पापड़ों की टोकरी उसने एक किनारे सम्भाल कर रख दी थी, और गुरु के कहने पर अब वह फिल्मी-गीतों की कापियों को लकड़ी के लम्बे तख्ते पर सजा-फैला रहा था। जब शो छूटता था, तो गुरु बड़े गेट के पास खुद खड़ा होकर नई-पुरानी फिल्मों के फिल्मी गीतों की कापियाँ बेचा करता था। और यह उसकी बड़ी पुरी आदत थी कि लौटने पर वह सारी

कापियों को एक ढेर की शक्ल में पटक देता था।

गुरु के पास मुख्यतः दो आइटमें थीं, पापड़ और फिल्मी गीतों की कापियाँ। वैसे मौसम होने पर वह केले या कच्चे नारियल की फाँकें भी बेचा करता था। उससे भी थोड़ी-बहुत बचत हो जाती थी। लेकिन कुल मिला कर फिर भी हालत खस्ता ही थी। दस-बारह रुपये रोज बच भी गये तो इससे क्या होता था। सिनेमा-माहौल में रहने के कारण रंडी, शराब और सौ तरह के ऐब भी थे और इसी तरह के लोगों में अधिकतर उठना-बैठना था। घर पर भी थोड़ा-बहुत देना पड़ता था। यानी कुल मिला कर मामला फटे-हाल ही था।

जब से शहर की आबादी बढ़नी शुरू हुई थी और महँगाई ने जोर मारा था, शहर के इस सबसे पुराने न्यू-एम्पायर सिनेमा की कोठरीनुमा दुकानों के ठेके भी बढ़ गये थे। वैसे तो मालिक नाजायज फायदा उठा रहा था, यह सब जानते थे, परन्तु दूकान न ली जाये तो दो जून की रोटी से भी हाथ धोना पड़े। इसलिये बढ़े हुए ठेके को भी मानना ही पड़ता था। अहाते के अन्दर ही सिनेमा-हाल की बगल में चार छोटी-छोटी दूकानें थीं, एक पान-सिगरेट के लिये, दूसरी चाय का स्टाल, तीसरी पकौड़े वाले की, और चौथी दूकान गुरु की थी। गुरु इसी पकौड़े वाले की कड़ाही से अपने पापड़ तल लिया करता था, उसका उससे तय था, इसीलिये उसे अलग से अँगीठी का प्रबन्ध न करना पड़ता था। वह इस समय उसी पकौड़े वाले की अँगीठी के पास उकड़ूँ बैठा था और सिसकियों की आवाज बराबर सुनाई दे रही थी।

नया छोकरा अब तक फिल्मी-गीतों की कापियाँ सजा चुका था और अब वह वहीं गुरु के बगल में बैठ गया। अपनी जेब से उसने एक बुझे हुए सिगरेट का टोंटा निकाला और गुरु के जलते सिगरेट से छुआ कर उसे सुलगा लिया।

गुरु ने उससे कहा, 'काले, हिसाब तो दे।'

काले जब जेब से पैसे निकाल रहा था, तो गुरु ने फिर कहा, 'इस

बात को सुन ले काले, मैं हरामजदगी पसन्द नही करता, तुम्हें आते ही सबसे पहले पैसे मेरे हाथ में देने चाहिये थे....मुझे यह अच्छा नही लगता.... यह क्या तुम्हारे बाप का माल है....।'

काले अब पैसे गिन रहा था।

गुरु ने उस रोते-सिसकते छोकरे की तरफ इशारा करके कहा, 'यह सूअर का तुख्म बिल्लू आज मुफ्त में मार खा गया....इस सूअर के पुत्तर ने बात भी तो ऐसी ही की....लेकिन सुन काले, इस बिल्लू के बच्चे से कभी कहने की जरूरत न पड़ती थी, हाल से बाहर आते ही सारे पैसे मेरे सामने धर देता था ...और तुम किसी गुमान में मत रहियो, कभी तुमने गड़बड़ की सोची तो माँ के पेट से भी टाँग पकड़ घसीट लाऊँगा....।'

बिल्लू थोड़ी देर के लिये सिसकना भूल गया था। गुरु ने सचमुच में उसकी तारीफ की थी और इज्जत की थी। और वह भी काले के सामने, जो कि नम्बर एक का घोट्टा और बदमाश है। उसने सोचा, कि वह तीन साल से गुरु के पास काम कर रहा है, उसने कभी कोई ऐसी-वैसी बात भी तो नही की। तभी उसने सोचा, कि वह गुरु को काले की सारी बद-माशियों के बारे में बता दे, कि यह छोकरा बड़ा ही बेईमान, बदमाश और लफ्फड़बाज है, इसलिये गुरु को उससे बचना चाहिये। लेकिन फिर उसने ख्याल किया कि उसे गुरु को आगाह करने की क्या जरूरत है, काले चाहे जितना मर्जी उसे लूटे और चमका दे। उसने सोचा कि उसे गुरु से कोई हमदर्दी नहीं दिखानी चाहिये। आखिर गुरु ने भी उसे खामखाह इस बुरी तरह से पीटा है....और इतनी-सी बात के लिये....

बिल्लू उस मार को याद करके फिर सिसक पड़ा।

काले गुरु को हिसाब समझाने लगा था। बिल्लू ने सोचा, अभी गुरु काले को कैसी गंदी-गंदी गालियाँ दे रहा था....जब गुरु उसको पीट रहा था तब भी तो वह बेहद गंदी-गंदी गालियाँ दे रहा था....बिल्लू ने सोचा, गुरु की काले से निभ न पायेगी, और एक दिन उसे भी वह खूब पीटेगा और गंदी-गंदी गालियाँ देगा....काले गुरु के पास आ ही क्यों गया, बिल्लू

ने सोचा। काले वैसे इस जगह के लिये नया नहीं था। विल्लू उसे खूब अच्छी तरह जानता था, और वे दोनों कई बार इकट्ठे सिगरेट फूंक चुके थे। सिनेमा-हाल के अहाते के बाहर सड़क पर जो दूकानें हैं, उन्हीं में से एक चाय की दूकान पर काले काम कर रहा था। दस रुपये माहवार और दो वक्त रोटी। गुरु उसे फुसला कर ले आया होगा। गुरु का काम अकेले भी तो नहीं चल सकता न। उसे एकाध छोकरा तो चाहिये ही जो सिनेमा-हाल के अन्दर जा कर शो शुरू होने से पहले और इन्टरवल के समय पापड़ बेच सके। लेकिन, विल्लू ने सोचा, गुरु ही उसे क्यों फुसला लाया, बल्कि गुरु की बात सुनते ही काले उसके साथ आने को तैयार हो गया होगा। यह लालच क्या कम है कि सिनेमा-हाल में काम कर रहे हैं और पापड़ बेचते हुये हर शो मे दो-चार सीन मुफ्त ही देख लेते हैं।

उसने सोचा, उसे खुद भी तो यही लालच बराबर रहा है। हर नई-नई फ़िल्म के कुछ सीन बार-बार मुफ्त देखने को मिल जाते हैं, गेट के पास खड़े हो कर कुछ पसंदीदा नाच-गाने देख-सुन लेते है, और अंतिम शो में तो अक्सर अगले दर्जे वाला गेट-कीपर साधूराम उसे पूरी पिक्चर देख लेने देता है....

लेकिन आज तो भारी गड़बड़ हो गई। जब से वह यहाँ आया है पहले कभी ऐसा नही हुआ था....।

उसका चेहरा फिर पतला पड़ गया और वह गुरु की तरफ देखकर फिर सिसकियाँ लेने लगा।....लेकिन अब गुरु से कोई उम्मीद करना फिजूल था। गुरु ने तो साफ कह दिया था, 'जाओ मरो जाकर, भागो यहाँ से....।'

उसे बारह बजे वाले शो के इन्टरवल का फिर ध्यान आ गया।.... यदि वह आदमी उससे न टकराया होता और उसकी पापड़ों वाली टोकरी न गिरी होती....। इन्टरवल होने के समय सब छोकरे चाय, पकौड़े, पापड़ आदि चीजें लेकर गेट के बाहर खड़े थे, गेट-कीपर ने जब दरवाजा खोला तो सबसे पहले अन्दर जाने वालों में यही था, लेकिन अन्दर से बाहर आने वाला एक आदमी उसकी टोकरी से ऐसे टकराया कि टोकरी उसके हाथ

से नीचे गिर पड़े, और वह सोचे-सोचे कि क्या हो गया है तब तक नीचे बिखरे पापड़ों पर से कई लोग गुजर चुके थे। पूरे बीस पापड़ थे....दो रुपये के। उसकी दो दिन की मजदूरी। वह हैरान खड़ा रह गया था, गुमसुम! उसकी आँखें भी गीली हो गई थीं। चेहरा भद्दा पड़ गया था और देह कमजोर लगने लगी थी।....मगर कुछ देर बाद गेट-कीपर ने जब उसे समझाया था कि गुरु को चार-चार आने रोज करके दो रुपये कटवा देना, तब वह कुछ सचेत हुआ था। लेकिन फिर भी उसे बेहद अफसोस होता रहा था।

....मगर गुरु ने उसकी जरा न सुनी थी! और उसे एकदम से पीटना शुरू कर दिया था....।

हालांकि उसे इस बात से आश्चर्य भी हुआ था कि इतने कम नुकसान के लिये गुरु ने उसे इतना पीटा और इतनी गालियाँ दीं, जब कि वह चार-चार आने करके गुरु के सारे पैसे चुकता भी कर देता। मगर गुरु तो जैसे एकदम से गरज पड़ा था और उसने उसे काम से निकालने का निर्णय तुरन्त सुना दिया था...।

बिल्लू ने गुरु के पाँव पकड़ लिये थे....काम से न निकालो, माफ कर दो, पहली बार गलती हुई है....।

हालांकि, बिल्लू सोचता था, यह गलती भी कहाँ है, अचानक ऐसा हो गया, मेरा इसमें क्या कसूर था ...।

दूसरा शो शुरू होने से पहले तक उसे उम्मीद थी कि गुरु उसे माफ कर देगा और उसे काम पर रख लेगा, परन्तु गुरु जब काले को बाहर की दुकान से पकड़ लाया....और काले जब पापड़ बेचने हाल के अन्दर भी चला गया....तब उसकी सिसकियाँ तेज हो गई थीं....और फिर वह सोचता रहा था अब उसे कहाँ काम मिलेगा, पकौड़े वाले और चाय के स्टाल पर पहले ही तीन-चार छोकरे काम कर रहे थे....।

आकाश पर फिर काले-काले बादल इकट्ठे हो गये थे। इससे रोशनी काफी कम हो गई थी।

गुरु काले से हिसाब ले चुका था। अब दोनों के चेहरों पर कुछ-कुछ राहत थी।

काले ने गुरु से कहा, 'उस्ताद, एक सिगरेट तो देयो।'

गुरु का चेहरा एकदम गुस्से से भर गया। उसने आँखें फाड़कर काले को देखा। लेकिन दो क्षण बाद ही वह नर्म पड़ गया, और अपनी जेब में हाथ डालकर उसने एक मुड़ा-तुड़ा सिगरेट निकाला और उसे काले को देते हुये बोला, 'ले, मर जा कर....और मेरी इस बात को समझ लियो, यह पहली और आखरी बार है, फिर कभी मत माँगना....मुझे यह बातें अच्छी नहीं लगतीं। आखिर मैं तुम्हें पैसे देता हूँ....पूरा एक रुपया....और तुम करते ही क्या हो....चार शोग्रों में दो-चार मिनट के लिये हाल में जाकर पापड़ ही तो बेचना होते हैं....और तुम क्या करते हो....मौज करते हो.... अपने रुपये से चाहे तुम बीड़ी-सिगरेट फूंको या कुछ खाओ-पियो मुझे इससे कुछ नहीं लेना-देना....समझे....अब जाओ मरो जाकर, लेकिन आगे से खबरदार रहना....'

काले ने लगता था गुरु की बातें सुनी ही नहीं। उसने बगल की जलती अँगीठी से कागज जलाकर सिगरेट सुलगा ली थी, और अब वह सिगरेट फूंकता हुआ टट्टियों की तरफ चला जा रहा था....

गुरु भी अपनी सिगरेट जलाता हुआ जैसे हवा को सुनाता हुआ कह रहा था, 'साले इतने-इतने छोकरे हैं....अभी से इनकी यह हालत है.... सिगरेट पिए बिना इनकी टट्टी ही नहीं उतरती....'

इसी वक्त गुरु को बिल्लू के वहाँ होने का जैसे ताजा अहसास हुआ। उसने सिगरेट का जल्दी-से कश खींचते हुये गरजकर कहा, 'तेरी क्या माँ मर गई है जो अब रोये ही जा रहा है....चल उठ, भाग यहाँ से....उठ, उठ, उठ, चल....उठता है कि नहीं....अब कभी मत आना मेरी दूकान पर ....कुत्ते का पुत्तर, साला....माँ का यार....अब भागता है कि दूँ एक झाँपड़....'

बिल्लू ढीली चाल से चलता हुआ गुरु की दूकान से दूर आ गया।

लेकिन उसने सुना, गुरु अब भी बके चला जा रहा था।

हल्की-हल्की बूंदें फिर पड़नी शुरू हो गई थी।

टट्टियों के पास जहाँ शेड है, वहाँ पेन्टर धरम सिंह बोर्ड लिख रहा था। परसों नई फिल्म लगने वाली थी। बिल्लू वहीं आकर खड़ा हो गया। वहाँ छोटे-छोटे और भी कई लड़के खड़े थे और पेन्टर धरम सिंह को बोर्डों पर फिल्मों और फिल्मी-सितारों का नाम लिखते हुये देखने में मशगूल थे। बगल में एक लड़का अभी भी कुछ बोर्डों को धोकर साफ कर रहा था। और उसके बगल में एक और लड़का घुसे हुये बोर्डों पर फिल्मी-पोस्टर चिपका रहा था। वह पोस्टरों को चिपकाता जाता और फिर उन बोर्डों को पेन्टर धरम सिंह के पास रखता जाता। बिल्लू भी पेन्टर धरम सिंह को छोटे-बड़े बुरशों से लिखता हुआ देखने में लीन हो गया।

बिल्लू पहले भी कई बार पेन्टर धरम सिंह को ऐसे ही काम करते हुये देख चुका था। वह काफी-काफी देर तक उसके पास खड़ा रहा करता था। और भी कई लड़के पेन्टर धरम सिंह को ऐसे ही घेरे रहते थे। बिल्लू को बोर्डों पर लिखने का यह काम बहुत अच्छा लगता था। इस काम में बहुत इज्जत थी। सिनेमा हॉल में सभी लोग पेन्टर धरम सिंह को उस्ताद कह कर बुलाते थे। उस्ताद को काम करते हुये देखकर आज बिल्लू के दिमाग में यह ख्याल आया कि उसे भी यह काम सीख लेना चाहिये। इसमें रोटी भी आराम से मिलेगी और बहुत इज्जत भी। यह ख्याल उसके दिमाग में एकदम से भड़क उठा था। फिर उसने सोचा कि उसे उस्ताद से इस बारे में कहना चाहिये। परन्तु वह कहे कैसे? और कह देने से क्या उस्ताद मान जायेगा? यदि न माना तो? क्योंकि उस्ताद के पास पहले भी तीन-चार लड़के शागिर्दी कर रहे हैं। उसने सोचा कि इन लड़कों की अच्छी किस्मत है।

बिल्लू का चेहरा इस विचार से बुझ-सा गया था। वह पहले से भी अधिक निराश लग रहा था।

इसी समय उस्ताद ने बोर्ड धोने वाले लड़के से कहा, 'ऐ सुक्खी, जा

के एक चाय तो ले आ।'

बिल्लू ने सोचा कि अगर उस्ताद ने उससे चाय लाने के लिये कहा होता तो वह भागा-भागा चला जाता। कितना मजा आता।

इसी वक्त उसने टट्टियों वाले दरवाजे पर काले को खड़े देखा। काले भी उसकी तरफ देख रहा था और इशारे से उसे अपने पास बुला रहा था। बिल्लू ने सोचा पता नहीं क्या बात है, परन्तु वह शेड में से निकल कर काले के पास चला गया।

अब बूंदाबांदी तेज हो गई थी।

काले ने उससे पूछा, 'तुम्हारे पास सिगरेट है ?'

वह कुछ बोला नहीं, उसने न में गर्दन हिला दी।

काले ने कहा, 'मेरे पास बीड़ी है, तू यहीं रुक, मैं भाग कर सुलगा लाता हूँ।'

काले जब लौटकर आया तो उसके हाथ में सुलगी हुई दो बीड़ियाँ थी। एक उसने बिल्लू को दे दी।

बीड़ी का कश लेते हुये काले ने कहा, 'अब तू क्या करेगा।'

बिल्लू के पास कोई जवाब नहीं था। उसने अभी कुछ सोचा ही नहीं था। सोचने और तय करने का उसके पास कोई जरिया भी नहीं था। उसने अपना उदास चेहरा लटका लिया।

काले ने कहा, 'तू प्यारे के टी-स्टाल पर क्यों नहीं चला जाता। मेरे यहाँ से आने के बाद उसने अभी किसी को रखा नहीं होगा। तू उससे जा के कह दे।'

बिल्लू ने कहा, 'मैं वहाँ काम नहीं करना चाहता।'

काले ने कहा, 'अरे, उसमें हरज क्या है, दस रुपये महीने के मिलेंगे, दोनों वक्त का खाना, चाय-वाय, बीड़ी-सिगरेट तू ऊपर से मार सकता है....'

परन्तु बिल्लू कुछ और ही सोच रहा था। वह सिनेमा-हाल की नौकरी नहीं छोड़ना चाहता था। यहाँ कितने मजे रहते हैं। ऊपर से बाहर के

लड़कों पर यह रोब कि हम सिनेमा-हाल में काम कर रहे हैं....

काले ने उसे चुप देखकर फिर कहा, 'उस्ताद तो अब तुम्हें फिर से रखेगा नहीं....'

परन्तु बिल्लू चुप हो गया था। वह समझ नहीं पा रहा था कि वह क्या कहे या उसे क्या कहना चाहिये। मगर वह चिन्तित अवश्य हो गया था कि अब वह क्या करेगा। और यदि कुछ नहीं करेगा तो बड़ी मुसीबत हो जायेगी।

उसने एक लम्बा कश लेकर बीड़ी दूर फेंक दी। वह पेन्टर धरम सिंह की ओर देखने लगा था।

काले कुछ उत्साह में नजर आ रहा था। वह यह कहकर वहाँ से चल दिया कि 'उस्ताद मुझे ढूंढ रहा होगा, मैं चलता हूँ—'

बिल्लू उसे जाते हुये देखता रहा। फिर वह अन्दर पेशाब करने चला गया।

यहीं उसे ख्याल आया कि उसे गुरु के बगल वाले मालिकों, पकौड़े वाले रामरखे और चाय वाले मुरली से बात करके देख लेनी चाहिये। शायद वे उसे रख लें। उन्हें जरूरत तो रहती ही है। लड़के आते-जाते रहते हैं। अपने इस ख्याल से दो क्षण के लिये उसे खुशी हुई। परन्तु बाद में उसे ध्यान आया कि गुरु के पड़ोसी होने के कारण वे उसे बिलकुल न रखेंगे। और जब गुरु उसे कितनी ही देर तक पीटता और गालियाँ बकता रहा था तो इनमें से कोई उसे बचाने नहीं आया था, न ही इनमें से किसी ने गुरु को उसे पीटने से मना किया था। बल्कि ये लोग कैसे बेशर्मी से उसे पिटता देखकर हँस रहे थे। उसने सोचा, यह सब मालिक एक जैसे होते हैं। उसने सोचा, वह इनके पास काम माँगने नहीं जायेगा, न ही रामरखे के पास, न ही मुरली के पास। तब ?

जब वह बाहर आया तो बूंदाबांदी वैसे ही हो रही थी। पेन्टर धरम सिंह अपने काम में मस्त था और लड़के उसको वैसे ही घेरे खड़े थे। वह भी पेन्टर धरम सिंह के पास आकर खड़ा हो गया।

छोटे वाले सभी बोर्ड धोये जा चुके थे। सुक्खी ने कहा, 'उस्ताद, बोर्ड तो सब खत्म हो गये।'

उस्ताद ने कहा, 'इसमें पूछने की क्या बात है वे।' फिर कहा, 'तुम अब उन पर चूना लगा दो। बस, दो बोर्ड छोड़ देना, वे लाल रंगे जायेंगे।'

बिल्लू ने देखा, सुक्खी उस्ताद की हलकी डांट के बावजूद कुछ अधिक खुश हो उठा था और वह चूने वाले डिब्बे में कूची चलाने लगा था।

उस्ताद ने सुक्खी से फिर कहा, 'जा, जा के पूछ तो आ, बाकी बोर्ड कब आयेंगे। आज या कल।'

सुक्खी यह सुनते ही तुरन्त मैनेजर के कमरे की तरफ भाग गया। सभी लड़के उसे बूदाबांदी में से लांघता हुआ देखने लगे थे।

सुक्खी दो मिनट में ही वापस आ गया, 'उस्ताद, बाकी बोर्ड कल सुबह आयेंगे।' यह कहने के साथ ही उसने चूने वाली कूची फिर हाथ में पकड़ ली थी।

इसी वक्त वहाँ पर बीस-पच्चीस साल का एक लम्बा-सा लड़का आया और 'आदाब अर्ज' कहते हुये उस्ताद के पास बैठ गया। यह इरशाद था, उस्ताद का पुराना शागिर्द। इरशाद शहर में अब अलग से काम करता था, परन्तु बिल्लू ने उसे पहले भी कई बार यहाँ उस्ताद के पास आते देखा था। उस्ताद इरशाद को देखकर बहुत खुश हुआ करता था।

उस्ताद के दोनों छोटे शागिर्दों ने इरशाद को 'शाद भाई, नमस्ते' कह कर फिर अपना-अपना काम शुरू कर दिया था। उस्ताद ने बुरश रंग के डिब्बे पर रख दिया था, और अब वह इरशाद के साथ हँस-हँसकर बातें करने लगा था। एकाध मिनट बाद ही उस्ताद ने फिर सुक्खी को दो चाय लाने के लिये कह दिया था।

बिल्लू को यह सब बड़ा अच्छा लग रहा था। उसे महसूस हो रहा था कि वह खुद भी उस्ताद के इन सारे कामों और बातों में शामिल है। उसे एक अजानी सी खुशी अपने अन्दर भर गई लगती थी। उसने एक बार फिर सोचा कि वह उस्ताद से काम के लिये कहे। एक दिन वह भी इरशाद

की तरह अपना अलग से काम-धन्धा चलाने लगेगा। और कितनी इज्जत है इस काम में....। मगर उस्ताद क्या मान जायेगा ? और वह कहे कैसे ? उस्ताद के पास तो पहले ही शागिर्द लोग काम कर रहे हैं.... '

बिल्लू अपने-आप में फिर दब्बू-सा हो गया। उसका चेहरा पीला हो गया था।

इरशाद और उस्ताद को बातों में लगा देखकर सभी लड़के वहाँ से खिटक गये थे। कुछ बूंदाबांदी में भीगते हुये बाहर के गेट की ओर चल दिये थे, और कुछ उस तरफ चले गये थे जहाँ 'चल रही' और 'शीघ्र आ रही' फिल्मों की तस्वीरें लगी थी। बिल्लू भी इन्हीं लगी तस्वीरों के बगल में आ कर खड़ा हो गया और कई बार पहले देखी हुई फोटोओं पर नजर दौड़ाने लगा।

फिल्मी तस्वीरों को देखते-देखते उसी की बगल में खड़े दो लड़के तरह-तरह की गन्दी-मन्दी इधर-उधर की बातें करने लगे थे। बिल्लू उनकी बातों को सुनकर मुस्कराने लगा था और उसका दिल कर रहा था कि वह भी उनकी बातों में शामिल हो जाये। परन्तु वे लड़के पता नहीं कौन थे, थे तो उसकी उम्र के, दस-बारह के, मगर वह उन्हें जानता नहीं था, वैसे वे भी उसी की तरह के थे, नंगे पाँव और मैले-फटे कपड़ों में।

इसी क्षण उसने सुना, इन्टरवल की घन्टी बज रही थी। इसका मतलब था, पाँच बज गये थे। घन्टी की इस आवाज के साथ ही उसका चेहरा एकदम-से लटक गया था। मगर उसका पूरा ध्यान अब सिनेमा-हाल के गेटों की तरफ था। गेट अभी खुले नहीं थे, परन्तु हाल के अन्दर अलग-अलग चीजें बेचने वाले लड़के भाग-भाग कर गेटों के पास इकट्ठे हो गये थे। चाय वाले, पकौड़े वाले, सिगरेट-पान वाले, पापड़....। काले भी पापड़ों वाली टोकरी अपने दोनों हाथों में पकड़े हुये वहाँ खड़ा था। यह देख कर बिल्लू के अन्दर पता नहीं एकदम से क्या हुआ कि वह अपने ही आप में बेहद कमजोर महसूस करने लगा। जैसे किसी ने उसकी दोनों टाँगें काट दी हों, या उसके दोनों हाथ टूट गये हों। कमजोरी की इस अवस्था में भी

वह लगातार उसी तरफ घूरे जा रहा था। उसकी नजरें काले की तरफ कम और पापड़ों वाली टोकरी पर अधिक अटकी थी। जैसे उसके सामने कोई और वजूद न होकर केवल पापड़ ही पापड़ फैल गये थे। इसी दौरान में उसने देखा था, कि वह एकदम भयानक गुस्से में भर गया है और उसने पापड़ों की टोकरी को जोर का ठुड्ड मार कर उसे उलट दिया है और पापड़ चारों ओर बिखर गये हैं। काले जोर-जोर से रोने लगा है, और गुरु वहीं पर आ कर काले को बुरी तरह से पीट रहा है....। परन्तु काले का यूँ रोना और पिटना भी उसे जरा अच्छा नहीं लगा।....बल्कि तब उसका दिल किया कि वह गुरु को पकड़ कर कस कर उसके दो लातें लगा दे....

गेट खुल गये थे और चीजें बेचने वाले लड़के झम-झम करते हाल के अन्दर गायब हो गये थे। हाल के अन्दर से काले की मद्धम-सी आवाज उसे यहाँ तक सुनाई दे रही थी....पापड़....दस पैसे....

हाल में से निकल कर कुछ लोग फिल्मी तस्वीरें देखने इधर आ गये थे। बिल्लू अब वहाँ अधिक देर खड़ा नहीं रह सका। उसकी हिचकियाँ फिर शुरू हो गई थीं, और उसकी आँखें भीग गई थी।

ढीले कदमों से चलता हुआ वह बड़े गेट की ओर आ गया। चोरी-छिपे उसने गुरु, रामरखे और मुरली को भी देखा, वे अपने-अपने कामों में व्यस्त थे और गाहकों को जल्दी-जल्दी निबटाने में लगे थे....

बड़े गेट से बाहर आकर उसने काले की बात को याद करते हुये सोचा कि उसे टी-स्टाल वाले प्यारे की दूकान पर चले जाना चाहिये....दस रुपये....और दो वक्त की रोटी....ऊपर से चाय-वाय, बीड़ी-सिगरेट....